नया इंसान

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

विद्या प्रकाशन मन्दिर दिल्ली—७

प्रथम संस्करण—अक्टूबर १९५५
चित्रकार—कांतिचन्द्र बीकानेर

मूल्य तीन रुपये

विद्या प्रकाशन मन्दिर, १६८१ कूचा दखिनीराय दरियागंज दिल्ली ७
द्वारा प्रकाशित तथा सचदेवा प्रेस, हौज काजी दिल्ली में मुद्रित।

नया इंसान

जीवन की दो भयंकर दुर्घटनायें हैं, पहली इच्छित वस्तु का पा लेना दूसरी उसका न पाना। पर इन्सान वही है जो इन दुर्घटनाओं में भी सच्चा इन्सान बना रहे।

अपने साथी

श्री गोपाल कृष्ण जोशी को

बीकानेर वास की सुखद

क्षणों की स्मृति में

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

दो शब्द

चन्द्र जी का यह उपन्यास हिन्दी साहित्य की किस श्रेणी में आयेगा इसका निर्णय तो आने वाला समय और पाठक गण ही करेंगे। पर में इतना अवश्य कहूँगा कि जिस अछूते कथानक, एक अजीब सी आकर्षक शैली तथा प्रवाह को लेकर लेखक चला है वह वास्तव में सराहनीय है। निश्चय ही, जैसा कि भारत की प्रमुख पत्रिकाओं ने पूर्व-कृतियों पर राय देते हुए लिखा है, कि यह उठता हुआ लेखक एक दिन जाने अनजाने चुपके से दिग्गज साहित्यकों की श्रेणी में आ जायेगा, मेरा अपना विश्वास है कि यह उपन्यास अकेला ही उसे वह सौभाग्य देने के लिए पर्याप्त होगा।

रूप-विकृति जीवन का एक भयंकर अभिशाप है, फिर नारी की रूप-विकृति। इस युग में जब कि आज की नारी का प्रधान गुण सौंदर्य प्रसाधनों में आवेष्टित हो चुका है, उसका भावी पति पहले उसके रूप को तोलकर उसे वरण करता है, तो एक परम सुन्दरी का दुर्घटना वश रूप-विकृता हो जाना उसके लिए कितनी आत्म-ग्लानि और अन्तर्दाह में जलने वाली बात है। इस ख्याल से कि संभवतः इस अभाव के कारण वह वह अपना परम मातृत्व पद भी प्राप्त न कर सकेगी, विह्वल हो उठती है।

"निराशाओं से घबराकर जीवन देने के लिए नहीं बल्कि संघर्षों से लड़ने के लिए है। प्रकृति की हर देन को वरदान समझ कर एक नया विश्वास ले नव निर्माण करना चाहिए। लेखक ने इसी भावना में आने

वाले युग का एक स्वर्णिम भविष्य देखा है, आशा और उत्साह का दीप जलाकर।

सफेदपोश नवयुवकों के प्रवंचना मय जीवन पर भी लेखक ने अच्छा प्रकाश डाला है।

यथार्थ से हट कर दिखावे के लिए वे अपने तथा समाज के साथ कितना छल करते हैं ? यह पैनी दृष्टि से देखने वाली बात है। इस सत्य पर भी रोचक प्रकाश इसमें आपको मिलेगा।

प्रस्तुत पुस्तक की भाषा मधुर तथा प्राञ्जल है। शैली अपनी है। कथानक रोचक और नये जीवन की प्रेरणा लिए है।

निश्चय ही लेखक बधाई का पात्र है।

गाँधी जयन्ती
२ अक्टूबर १९५५

अमरनाथ शुक्ल 'साहित्य रत्न'
दिल्ली

मैं इतना ही कहूंगा

यह मेरा चौथा उपन्यास है।

इसका कथानक रूप विकृति का अछूता घटित कथानक है, कल्पना का तो कला और उद्देश्य के लिये सम्बल लिया गया है।

इसकी शैली अपनी है शायद आपको पसन्द भी आये। कहीं-कहीं किए गए नये प्रयोग आपको रुचिकर लगेंगे।

नारी के रूप की विकृति उसका अभिशाप है और आज के समाज की विषमतायें इन्सानियत को तड़पा रही हैं। तड़प की चरम सीमा परिवर्तन लायेगी, जरूर लायगी। मेरा अपना विश्वास है।

इस उपन्यास के प्रकाशन पर मैं बीकानेर अस्पताल के डाक्टर श्री शूरवीरसिंह (लन्दन) एवं भाई अमरनाथ शुक्ल को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

आशा है, पाठक मेरे अन्य उपन्यासों की तरह इसको भी अपनायेंगे।

साले की होली
बीकानेर (राजस्थान)
१५ अगस्त १९५५

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

१

***

"मैं आत्महत्या कर रही हूँ ?...बाबा ! संसार में कोई भी ऐसा इन्सान आज तक पैदा नहीं हुआ, जिसने यह सोचा भी हो कि वह आत्महत्या करेगा। आत्महत्या के लिये प्राणी को लाचार किया जाता है, उसे इतना मजबूर कर दिया जाता है कि वह यदि अपनी विकट परिस्थितियों से मुक्त होना चाहता है तो केवल आत्महत्या करके ही। और फिर वह आत्महत्या करने के लिये प्रेरित होता है।" उसकी आँखों से आँसू अविरल गति से बहे ही जा रहे थे। सिसकियाँ उसके स्वर में गत्यावरोध उत्पन्न कर रही थीं। वह क्षण भर चुप रही। उसने अपनी साड़ी के छोर से अपनी आँखों को पोंछा। वृद्ध का हृदय करुणा से भर उठा। वह सोच बैठा कि यदि वह थोड़ा सा पहले नहीं आता तो शायद यह युवती समुद्र की भयावह लहरों में अपनी जिन्दगी को समाप्त कर देती।

"और प्राणी को आत्महत्या के लिये लाचार तुम्हारा समाज करता है।" युवती पूर्ववत आवेश भरे स्वर में चिल्लाई—"वह समाज जिसमें नारी की पवित्रता और सत्यता पर अपने थोथे विचारों की आवाज को बुलन्द रखने के लिये गन्दा कीचड़ उछाला जाता है, उसके चरित्र पर निराधार आरोप लगाये जाते हैं, और अपनी दुर्बलता को छिपाये रखने के लिये उसे चरित्रहीन करार कर दिया जाता है, ताकि लोग इन तथा-कथित सुधारकों को अपना नेता मानें।"

समुद्र की उत्ताल तरगें किनारे से टकरा कर गर्ज उठीं। किनारे पर फैली दूर तक की मिट्टी गीली हो गई। जो लहर जितने वेग से आई

थी, वह उतनी ही धीमी होकर लौट गई। वृद्ध ने इस क्रम को ध्यान से देखा। देखने के साथ युवती के ललाट पर सिकन पड़ी और होठों पर तरस की हँसी—" इन लहरों के प्रबल प्रवाह की तरह तुम्हारे समाज के महान सुधारक रंग-मंच पर आते हैं। चरित्रहीन तथा पीड़ित, दुखित अबलाओं के उद्धार के तरीके एक अच्छे वैज्ञानिक की तरह ठोस तर्कों के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनके तरीके वास्तव में सदाचार भरे तथा कल्याणकारी होते हैं पर उनमें सच्चाई ठीक उसी प्रकार बोलती है जिस प्रकार एक धनिक की तारीफ करने में एक प्रशंसक के शब्दों में उसका पैसा बोलता है। कहने का मतलब यह है कि उनके तरीके उस समय बिलकुल बेकाम सिद्ध होते हैं जब कोई दुश्चरित्रा उस सुधारक के आदर्शवादी भाषण को सुनकर एक प्रश्न करती है कि क्या आप इस दुश्चरित्रा को गले लगाने को तैयार हैं?..............यह प्रश्न उस सुधारक की आत्मा पर बिच्छू-सा डंक मारता है। वह पत्थर की तरह जड़ हो जाता है। हम और आप सोचते हैं कि क्या हो गया है इस महान आत्मा को?...क्या हो गया है इसके धारा-प्रवाह भाषण को, क्या हो गया है इसके आदर्शों को? आप जितना देर इन सब पर विचार करेंगे तब तक वह वापस जाती हुई शान्त लहर की तरह मंच से उतर कर अपने यथास्थान पर आ विराजेगा या वह झेंपता हुआ कहेगा—"व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता, उसके लिये एक सामाजिक क्रान्ति की जरूरत है और हम सबको मिलकर क्रान्ति करनी चाहिए, इस समाज को बदल देना चाहिए जिसमें इन्सानियत का गला घोंटा जाता है, जिसमें नारी का सारा जीवन अत्याचार के आवर्तन में ही खत्म हो जाता है।"

युवती चिल्लाती-चिल्लाती चुप हो गई। अब तक वह वृद्ध के सामने खड़ी थी, बैठती हुई बोली—"तुम भी बैठ जाओ।"

वृद्ध बैठ गया। वह भावुक था इसलिये उसने एक कवि की तरह सोचा—"नारी का दूसरा नाम व्यथा ही तो है।"

"क्या सोच रहे हो तुम?"

"कुछ नहीं।"

"झूठ बोल रहे हो ?"

"नहीं तो।"

"यही तो आदमी की कमजोरी है कि वह बिना वजह ही झूठ बोलने का प्रयत्न करता है। हम और तुम जिस परिस्थिति में हैं, उसमें जीवित-प्राणी बिना सोचे रह ही नहीं सकता ? हर समय का सोचना बुरा नहीं। निरन्तर सोचने को ही तो चिन्तन कहते है और चिन्तन मनुष्य के नये पथ का निर्माण करता है, विकास करता है।" यह कह कर युवती तपाक से बोली—"मनुष्य की वार्तालाप में तारतम्य नहीं आ सकता। देखो, हम भी कितने विषयान्तर हो गये हैं ? कहाँ से कहाँ पहुँच गये हैं।"

समुद्र एक बार फिर गर्जा। युवती ने क्षितिज-छोर तक विस्तृत समुद्र को देखा। देखते देखते उसकी दृष्टि आकाश की ओर गई। एक तारा उसी क्षण टूट पड़ा। युवती ने टूटते हुए तारे के अन्ध-विश्वास को मन ही मन दोहराया—"आज फिर नये इन्सान का जन्म होगा।" और उसने वृद्ध की ओर देखा जो अब नीची गर्दन किये गतिहीन सा बैठा था। युवती ने उस वृद्ध के कन्धे को झकझोर कर कहा—"ये समाज-सुधारक चारित्रिक-ढोंग के पुतले होते हैं। पूँजीवादी युग की तमाम छिपी बुराइयाँ इनके विचारों में मिली हुई रहती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस 'नेता' नाम की उत्पत्ति या तो धनिग-वर्ग से होती है या मध्यम् वर्ग से, जो धनिक-वर्ग से बहुत ही निकट का सम्बन्ध रखता है। इसीलिए ये सही ढंग से नेतृत्व नहीं कर सकते। क्योंकि ये व्यक्तिवादी बहुत अधिक होते हैं और अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजली नहीं दे सकते। इन्हीं के स्वार्थों के कारण आज मुझे आत्महत्या करने के लिये विवश होना पड़ा।"

"मैं ऐसा नहीं समझता। मै तो विश्वास के साथ कहूँगा कि तुम्हें कभी भी ऐसा विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसी शिक्षिता और

सुलझी हुई विचारवाली युवती ऐसा सोच भी कैसे लेती है? यह विचार कर मुझे हैरत होती है।" वृद्ध की गम्भीर आँखें चमक उठीं।

"बात हैरत की ही है।...वह देखो ?" युवती ने थोड़ी दूर पड़े लिहाफ की ओर संकेत किया—"उस लिहाफ में एक बच्चा है,...मेरा अपना बच्चा।"

"बच्चा !"—वृद्ध चौक पड़ा। उसकी निगाह उस ओर उठ गई।

"हाँ बच्चा। इसी बच्चे ने मेरा जीना और मरना कठिन कर दिया है। "युवती के स्वर में दर्द भर उठा"—भावावेश में की गई गलती ने मेरे जीवन को जहर बना दिया। इसलिए ही तो मैं तुमसे विनती करती हूँ कि मुझे मर जाने दो। मृत्यु ही मेरी विपत्तियों का अन्त है, दुखों की समाप्ति है।"

"मैं तुम्हें नही मरने दूँगा। तुम कितनी विचित्र हो कि किसी से मरने की आज्ञा माँगती हो ? कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को अपने सामने मरते देख सकता है ?" वृद्ध ने प्रश्न किया।

युवती ने वृद्ध की आत्मीयता को जगाने की गरज से कहा—"यह मैं जानती हूँ।" युवती का स्वर शान्त हो गया।

"फिर तुम मुझ से ऐसी उम्मीद क्यों रखती हो ?"

"क्योंकि तुम समझदार हो, तुम्हें जीवन का तजुरबा है। मैं तुम्हे विश्वास दिलाती हूँ कि मेरी समस्या का समाधान ही मृत्यु है।"—उसने दृढ़ता से कहा।

"कुछ भी हो, मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा।" वृद्ध ने दृढ़ता से कहा "यह मेरा निश्चय है।" उसने युवती का हाथ पकड़ लिया।

"ऊँआ ऽऽ...ऊँआ ऽऽऽ" बच्चा रोया। युवती ने लपक कर उसे अपनी गोद में उठा लिया। उसे छाती से चिपका कर पुचकारने लगी। वृद्ध की आँखें युवती पर जम गईं। युवती ने बच्चे को अपने आँचल से ढँक कर दुग्धापान कराना शुरू किया जैसे मातृत्व हर स्थिति में अपना काम स्वतः करने लगता है।

वृद्ध ने तुरन्त पूछा—"बताओ माँ, तुम्हारे बिना इस गरीब को दुग्धपान कौन कराता ?'

"क्या कहा माँ ?" युवती चौंक उठी।

"हाँ हर नारी का चरम पद माँ ही तो है।" वृद्ध का स्वर शान्त था।

युवती की इससे वृद्ध के प्रति बड़ी आस्था हुई और तत्काल ही उसके पूर्व प्रश्न का उत्तर दिया।

"भगवान !"

"तुम भगवान के अस्तित्व को मानती हो ?"

'कभी, कभी।"

"मतलब ?"

"जब आदमी के वश के बाहर की बात हो जाती है तब वह अपने आपको सान्त्वना देने के लिये इस भगवान नाम की संज्ञा का आसरा लेता है। ढाढ़स के लिये सोच लेता है कि भगवान की यही मर्जी थी।"

"तो क्या केवल आत्म-सन्तोष के लिये तुम भगवान को मानती हो?"

"बस इतना ही।" युवती ने अपने बच्चे की ओर देखा।

काफी समय बीत चुका था। युवती का क्रोध और आवेश अब काफी शान्त हो चुका था। थोड़ी देर पहले वह कष्टों से आकुल होकर विचलित हो गई थी, होश-हवास खो बैठी थी, अब पुनः अच्छी स्थिति को प्राप्त हो रही थी। उसके चेहरे पर अवश्य ही सौम्य भाव उत्पन्न हो गये होंगे क्योंकि अन्धेरे के कारण वृद्ध उनको देख नहीं पा रहा था पर अब आवाज से उसके हृदय के धैर्य को भली-भाँति जान रहा था।

बद्ध ने गंभीरता से कहा—"मुझे पूरा विश्वास है कि अब तुम काफी स्वस्थ हो गई हो, तुम्हारी नुद्धि में उद्विग्नता अब नहीं रह पाई है। अब तुम मेरी बातों पर धैर्य से विचार-विमर्श कर सकती हो ?"

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन को स्वीकृति समझ कर बाबा ने प्रश्न किया—"फल को बिना समझे तुमने ऐसा कर्म ही क्यों किया कि आज तुम्हें आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा।"

"तुम्हारे प्रश्न का उत्तर बहुत लम्बा है, यदि तुम मुझे जीवित रहने का विश्वास दिला सको तो मैं तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का सही और सच्चा उत्तर दे सकती हूँ।"

वृद्ध उसी प्रकार शान्त रहा। धीरे से बोला—"मैं···मैं तुम्हें··· ···।" वृद्ध कहता-कहता चुप हो गया और दूसरे ही क्षण सावधान होता हुआ बोला—"मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता हूँ।"

"कर्त्तव्य ?" युवती की आँखों में विमस्य झलक पड़ा।

"हाँ, मैं तुम्हें पुलिस के हवाले करके···।"

"कायर !···छोड़ दे मुझे, मर जाने दे मुझे, एक नरक से बचा कर दूसरे नरक में डालना चाहता है। इतनी देर की शाब्दिक सहानुभूति और मेरी प्रार्थनाका यही फल है कि तुम मुझे पुलिस के हवाले कर दो और पुलिस मुझे आत्महत्या के अपराध में जेल की दीवारों में बन्दी बना कर यातना दे।···जाओ, बाबा जाओ, मुझे मर जाने दो।··· मैं अब उन तमाम व्यक्तियों से ऊब चुकी हूँ जो मेरे प्रति सहानुभूति प्रगट करते हैं।······जाओ···मैं कहती हूँ जाओ, मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगी। "···देखती हूं, तुम मुझे कैसे घसीट कर ले जाते हो ?"

वृद्ध विचार में पड़ गया। वह क्या करे और क्या न करे, इसी पर काफी देर तक विचारता रहा और अन्त में बोला—"आओ, मेरे साथ ?"

"कहाँ ?"

"मेरे घर।"

"नहीं, शायद तुम घर के नाम पर मुझे से छल कर बैठो तो ?"

"मैं ऐसा नहीं करूँगा।"

"क्या पता ?"

"मैं बहुत ही सहृदयी हूँ, विश्वास रखो।"

तब युवती ने उसकी गहरी भूरी आंखों में अपनी आँखें डाल कर उसके हृदय की गहराइयों को जानने की चेष्टा की पर अन्धेरा होने

के कारण उसे अपने इस प्रयास में मूर्खता नजर आई। वृद्ध ने दुबारा कहा—"मैंने जिन्दगी में किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया। हाँ, भला सैकड़ों का किया है।" उसने रुक कर फिर कहा—"मैं लेखक हूँ। पुस्तकें लिखता हूँ, यहाँ घंटों समुद्र के किनारे आधी रात गये बैठा रहता हूँ। विचारता रहता हूं।......अब तो तुम्हें विश्वास आ गया होगा ?"

युवती ने उत्तर नहीं दिया पर वह उसके साथ चलने को तैयार हो गई। उसने मन ही मन कहा—"मुझे आश्रय तो मिल ही जायेगा।"

ये दोनों साथ-साथ रात के गहरे अन्धेरे में चले जा रहे थे।

युवती ने पूछा—"तुम्हारे घर वाले कुछ कहेंगें तो नहीं ?"

"नहीं ?"

',तुम्हारा घर कितनी दूर है ?...

"यही आधा मील पर।"

"तुम्हारे पड़ोसी...।

"तुम इन सब बातों की चिन्ता छोड़ो। जो होगा, देखा जायेगा। मेरे पड़ोसी सब शिष्ट और सभ्य हैं, समझी !...और मेरी उम्र भी!"

बीच-बीच में वह सहम-सहम कर अपने बच्चे को अपनी छाती से चिपका लेती थी। कभी-कभी वह अपनी वर्तमान परिस्थिति को भूल कर उसे चूम भी लेती थी, तब वृद्ध-हृदय एक ऐसे पवित्र विचार से फूल सा उठता था जिसमें काफी सन्तोष होता था। कभी वह इस विचित्र नारी पर मन ही मन हँस पड़ता था कि कितनी नादान है यह औरत, आवेश में आकर अपनी जीवन लीला को समाप्त कर लेती तो क्या उसकी आत्मा को सन्तोष प्राप्त होता ? जो सुख और संतोष उसे अभी इस बच्चे को चूमने में मिलता है, जिस आनन्द का अनुभव अपने बच्चे को वह छाती से चिपका कर प्राप्त करती है,क्या उसे मरने पर होता ? कदापि नहीं। वृद्ध ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर मन ही मन कहा। "इस माँ और बच्चे के प्रेम को देखकर मैं स्वयं जिस सुखद कल्पना का अहसास करता हूँ,उस प्रेम की सच्ची अनुभूति कितनी अलौकिक होगी ?"

वृद्ध ने लम्बी निःश्वास छोड़ी—माँ, आखिर माँ, है, वह अपनी सन्तान को देखकर पागल हो जाती है, उसका प्यार उसकी रग-रग से उमड़ पड़ता है।"

रास्ते का अँधेरा अब सड़क पर लगी सरकारी बत्तियों से दूर होता जा रहा था। वृद्ध का उत्सुक मन प्रकाश पाते ही युवती के चेहरे पर जा टिका—यह देखने के लिये कि युवती कितनी सुन्दर या असुन्दर है?...पर युवती ने अपने चेहरे के बड़े भाग को अपने आँचल से ढँक रखा था अतः वृद्ध ने अपनी निगाह को दूर, बहुत दूर तक फैली सड़क पर जमा दी।

युवती ने कुछ देर बाद धीरे से पूछा—"तुम्हारा मकान अब कितनी दूर है?"

"बस अब पाँच मिनट का रास्ता है, घबराओ नहीं। मेरे पीछे-पीछे आती रहो।" वृद्ध ने उसकी ओर बिना देखे ही कहा।

"पर तुम्हारे घर वाले?" युवती ने अपने वाक्य को स्पष्ट करना उचित न समझ कर भावी आशंका के प्रति संकेत सा किया।

"मैं अपने घर का स्वामी हूँ और तुम शायद यह भी नहीं जानती हो कि मेरी उम्र इतनी ढल चुकी है कि कोई व्यक्ति जिसे हम बुद्धि-वादी और समझदार कह सकते हैं, मेरे और तुम्हारे बारे में गलत धारणा नहीं बनायेगा,...और यदि कोई क्षुद्र प्राणी हमारे तुम्हारे बीच किसी अनैतिक सम्बन्धों के बारे में धारणा बनाता है तो मैं यह दावे से कह सकता हूँ कि उस व्यक्ति का चारित्रिक-पतन अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका है।" इतना कह कर वृद्ध ने युवती की आँखों में अपनी आँखें डाल दीं। वृद्ध की आँखों में विश्वास और सन्तोष था तथा आवाज में सच्चाई। इन सब ने युवती के हृदय को असीम धैर्य प्रदान किया। युवती ने तब एक सन्तोष की साँस ली। तभी उसके बच्चे ने रोनी सूरत बनाई। युवती ने तुरन्त उसे गोद में झूले की तरह झुलाना शुरू कर दिया। उसके मुँह से संसार की हर माँ की तरह कुछ शब्द

प्रस्फुटित हो गये—"मत रो मुन्ने, मत रो, सो जा...सो जा मेरे बच्चे सो जा।" फिर उसने कई बार उसे चुमकारा।

वृद्ध का घर आ गया था।

वृद्ध ने घर की ओर संकेत करके कहा—"यह है। मेरा अपना घर, यहाँ तुम्हें सब तरह से आराम मिलेगा।"

युवती ने उस घर को एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक एक निरीक्षक की दृष्टि से देखा। घर की बनावट बिलकुल आधुनिक थी। बीचो बीच घर और उसके चारों ओर बगीचा। बगीचे के चारों ओर चार, फीट ऊँची चाहर दीवारी।

युवती ने पूछा—"आपका मकान बहुत अच्छा है!"

"तुम्हें पसन्द है?"

"बहुत, यदि मेरे जीवन की संरक्षणता हो सके तो!"

"तुम्हें इस बुड्ढे पर विश्वास नहीं?"

"है, पर सन्देह के साथ!"

"मतलब?"

"कहीं तुम मुझे पुलिस के हवाले...।

"वास्तव में संकट के क्षणों में मनुष्य का विवेक हद से ज्यादा वहमी हो जाता है।...तुम मुझे यह बता सकती हो कि तुम्हें पुलिस में देने से मेरे कौन से स्वार्थ की सिद्धि हो जायेगी? हाँ! कुछ देर पूर्व मेरा जो निश्चय था, वह अब मेरे दिमाग से बिलकुल हट चुका है। अब तुम मेरे यहाँ स्वतन्त्रता-पूर्वक रह सकती हो। तुम्हें जरा भी नहीं घबराना चाहिये।" और वृद्ध ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये कहा—"मैं लेखक हूँ, झूठ और विश्वासघात से हमेशा दूर रहता हूँ।"

अब तक वे कमरे में आ गये थे।

वृद्ध ने उसे कुर्सी पर जो गोल मेज के पास लगी थी, बैठने का संकेत करके नौकर को खाना लाने को कहा—"तुम खाना तो खाओगी ही।"

खाना खा गया। युवती ने भूखी निगाह से खाने की ओर देखा. फिर बोली—"तुम बाहर चले जाओ बाबा।"

वृद्ध ने विस्मय से पूछा—"मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि तुम मुझ से यह आधा पर्दा क्यों करती हो ?"

"यह भी एक लम्बी कहानी है।"

'ओह !···अच्छा तुम पहले खाना खा लो, बाद में सुनूंगा।" कहता कहता वृद्ध बाहर चला गया।

पन्द्रह-बीस मिनट के बाद उसने कमरे के दरवाजे पर दस्तक दी। युवती ने अपने मुँह को पहले की तरह ढँक लिया और वह सावधान होकर बैठ गई।

"खाना खा लिया ?" वृद्ध ने उसके नजदीक आकर पूछा।

"जी।"

"पेट भरा या नहीं ?"

"भर गया।"

"और तुम्हारे बच्चे का पेट ?"

युवती चुप हो गई। वृद्ध ने उसके चेहरे के भावों को पढ़कर उसकी छाती की ओर देखा। देखकर मन ही मन अन्दाज लगाया—"शायद इसकी छातियाँ उस माँ के दूध से भरी हुई नहीं हैं जो अपने बेटे को देखकर चोली के पर्त की परवाह किए बिना धारा का रूप धारण करके उसके मुँह में चला जाता है, यह प्रमाणित करने के लिए कि यह मेरा अपना बेटा है, अपना।"

"क्या सोचने लगे बाबा ?"

"कुछ नहीं।" प्रकट रूप मे वृद्ध ने कहा और मन ही मन पश्चाताप कर उठा।" इस पश्चात्य सभ्यता-संस्कृति से प्रभावित इस देश में मातृत्व कितना क्षीण हो गया है ? ऐसा मालूम पड़ता है कि दूध से भरी छातियाँ इस बनावटी वातावरण में,इस व्यवसायिक व्यापार-सम्बन्धों में

सूखती जा रही हैं और एक दिन ये मातायें ममता को भी भूल जायेंगी।

"आप बार-बार गम्भीर क्यों हो जाते हो बाबा ?"

"भावुक हूँ,...हाँ देखो, वह खूँटी पर थर्मास लटक रहा है, उसमें दूध है, बच्चे को लाकर पिला दो।......दूध पिलाकर सो जाना। मैं सवेरे तुम्हारे रहस्य को सुनूँगा, तुम्हारे इस पर्दे के राज को जानूँगा,...समझी।" कह कर वृद्ध कमरे के बाहर चला गया।

२

***

रात ढल रही थी। आकाश में तारे चमक रहे थे। युवती के कमरे में हरा बल्ब जल रहा था जिससे वृद्ध ने यह समझ लिया था कि वह सो गई है, उसका प्यारा बच्चा भी सो गया। पर उसने तुरन्त सोचा कि उसे क्यों नहीं नींद आ रही है ? फिर उसने अपने आप से कहा कि वृद्धावस्था में कुछ तो वैसे ही नींद नहीं आती है और आज तो उसके सोने की घड़ी भी टल चुकी है। उसका दिमाग भी कुछ परेशान सा है। वह जो नव-युवती उसके सम्पर्क में आत्माहत्या करती हुई आ गई है, जरूर अपने साथ कोई असाधारण रहस्य छिपाये हुए है। बौद्धिक धरातल उच्च स्तर का है, मृदुभाषिणी है, भावुक है और इतना सब होते हुए वह एक माँ है, माँ।"

वृद्ध अपने बिस्तरे पर से उठकर खिड़की के पास आया। खिड़की की राह उसने अन्तत तक बिस्तृत नभ की ओर निहारा। निहार कर उसने कवियों की तरह भाँति-भाँति की कल्पनायें की।

जैसे राह चलता राही ठोकर से सावधान होता है ठीक उसी प्रकार सावधान होता हुआ वृद्ध स्वतः बड़बड़ा उठा—"वह व्यर्थ ही इतना परे-

शान हो रहा है, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि कल सवेरे वह उस युवती से सम्बन्धित तमाम सत्यों को जान जायेगा जिनके लिये वह इस समय व्यर्थ ही चिन्तित है ।"

"मैं भी एक गधे से कम नहीं हूँ ।"—वृद्ध ने अपने आप पर यह आरोप लगाया— 'व्यर्थ ही अपनी शक्ति को नष्ट करने पर उतारु हो गया हूँ । कहीं यह युवती वेश्या हुई तो ?···धत् कितनी गन्दी कल्पना कर लेता हूँ मैं । चलो, छोड़ो इस पचड़े को और वृद्ध धीरे-धीरे निःशब्द कदम उठाता हुआ पुनः बिस्तरे पर सो गया ।

पहले उसने सोने की भरपूर चेष्टा की पर जब उसे नींद नहीं आई तो उसने अपने विचारों को विषयान्तर करने के हेतु नजदीक की मेज से 'सी. वर्जिल जारजो' का उपन्यास उठाया और वह बीच में से पढ़ने लगा ताकि उसका ध्यान फिर से उस युवती के बारे में बुरी-बुरी धारणायें न बनाये ।

उसने सर्वप्रथम उपन्यास की पंक्ति को पढ़ कर मन ही मन दोह-राया—"अर्जी संख्या २, विषय मानवी सौन्दर्य, (पाश्चात्य यान्त्रिक सभ्यता में आदर्श) ।"

फिर वृद्ध ने उपन्यास की इस अर्जी को बड़े ही ध्यान-पूर्वक पढ़ना प्रारंभ किया—

"कल रात एक जर्मन—प्रोफेसर से मैंने सौन्दर्य-विज्ञान की चर्चा की । सभी दूसरे यूरोपियों की तरह,जर्मन लोग भी शास्त्रीय पाण्डित्य से आगे नहीं बढ़ सके हैं । यही कारण है कि उनका सामाजिक संस्थापन गड़-बड़ा गया है । तुम्हारी अपनी सभ्यता के समान स्वस्थ और प्रगतिशील सभ्यता को पाश्चात्य यान्त्रिक की ही तरह अपनी आधुनिक कला का विकास करना होगा ।"

"इस प्रोफेसर ने मुझे कैम्प के मैदान में चलते-फिरते कैदी दिखायें । यद्यपि, जैसा तुम जानते हो, वे अब केवल हड्डियों और चमड़ी का समूह मात्र है, उसने कहा वे बदसूरत हैं । वह सौन्दर्य के यूनानी आदर्श

की दलदल में फंसा है। मेरी सम्मति में जो मानव चमड़ी के अन्दर हड्डियों के ढाँचा मात्र रह गये हैं, वे शानदार हैं—कला का यथार्थ नमूना हैं। वे उस मानवी सौन्दर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो आधुनिक यान्त्रिक सभ्यता का सबसे बड़ा प्रतीक है।"

"मैंने उस जर्मन प्रोफेसर से यह बात मनवाने की कोशिश की कि पृथ्वी की किसी भी दूसरी सभ्यता की अपेक्षा तुम्हारी सभ्यता में सौन्दर्य के लिये कहीं अधिक आदर और उसकी कहीं ऊँची प्रशंसा है। आदमी के शरीर से चर्बी निकाल डालने की तुम्हारी प्रथा के मूल मे केवल सौन्दर्य की, विश्व को अधिक सुन्दर बनाने की भावना है। उसकी समझ नहीं आया। जर्मन लोग किसी बात को सदैव बड़ी देर से समझते हैं। इसीलिए लोग कहते हैं उन के सिर में बन्दूक की गोलियां भरी हैं। '''कल मैं मानवी सौंदर्य के आधुनिक पाश्चात्य आदर्श पर एक व्याख्यान दूंगा।"

"स्विटजरलैंड का एक शिल्पी है। नाम है एल्बर्तो ग्यूको मेत्ति। उसने अपने क्षेत्र में उन्हीं सिद्धान्तों से प्रेरणा ग्रहण की है और पुरुष तथा स्त्री के सौंदर्य के सम्बन्ध में उन्हीं आदर्शों को प्राप्त किया है जिन्हें तुमने व्यवहार में आदमी के शरीर से चर्बी और माँस निकाल कर प्राप्त कर लिया है। उसके बारे में कहा गया है—"

"अशान्त कलाकार ग्यूको मेत्ति की कठिनाई यह थी कि वह एक बार में ही अपना तमाम काम समाप्त नहीं कर सकता था। यदि वह नाक से आरम्भ करता तो चेहरे की शकल और उसे देखने का दृष्टिकोण जाता रहता। उसने लिखा है कि 'नाक की एक तरफ और दूसरी तरफ सहरा का फर्क है।' आगे चलकर समस्त वस्तु को एक साथ ग्रहण करने के प्रयत्न में उसकी कृतियाँ सिकुड़ने लगीं और इतनी छोटी हो गई कि चाकू के स्पर्श मात्र से गिर पड़े। अन्त में उसने अपनी मूर्तियाँ तभी यथार्थ प्रतीत होती जब वे लम्बी और दुबली-पतली रहती ग्यूको मेत्ति का कहना है कि 'मैं आज लगभग वही हूँ।' अस्तित्ववादी जीन पोल

मार्लरो ने एक सूची की भूमिका में लिखा है कि उसके शिल्प का मतलब, स्थान में से चर्बी को हटा लेना मात्र है।"

"कैम्प में तुम ठीक यही कुछ कर रहे हो। मेरा सैदव से यही मत रहा है कि तुम्हारी सारी सभ्यता सौन्दर्य सम्बन्धी सिद्धान्तों पर आश्रित है। यह कितना सुन्दर होगा जब कल के विश्व में, सारे संसार में ऐसे ही लोग होंगे जिनके बदन सौन्दर्य सम्बन्धी इन्हीं नये सिद्धान्तों के साथ मेल खाते होंगे जैसे कि ग्यूको मेत्ति की कला में दिखाई देते हैं और तुम्हारी कला में।"

आपका

"साक्षी"

वृद्ध की आँखों में अर्जी पढ़ते पढ़ते व्यथा चमक उठी। उसकी आँखें ऐसी मालूम दे रही थी कि जैसे ये अपलक आँखें आन्तरिक पीड़ा के कारण थोड़ी देर में रो पड़ेंगी। उसका शरीर भी जड़ सा हो गया। उसने करवट बदली। आँखें बन्द की और फिर हड़बड़ा कर उठा। उठ कर उस कमरे की ओर गया जहाँ वह युवती दूसरी ओर मुँह किए सोई हुई थी।

युवती की छाती निरावरण हो चुकी थी इसलिये वह उसकी नंगी छाती के बहुत बड़े भाग को अच्छी तरह से देख सकता था। उसने उसकी शुष्क छाती पर किसी चोली को देखा और सोच बैठा कि क्या यह ग्यूको मेत्ति की यथार्थवादी कला नहीं है। उस कलाकार की तरह ही इस समाज रूपी निर्मम कलाकार ने इस सुन्दर नारी को चर्बी रहित नहीं कर दिया है?...शायद यह समाज की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति इसी चर्बी रहित इन्सान की सही नकल होगी,। साक्षात प्रतिमूर्ति होगी, जिस पर आने वाली नई पीढ़ी गर्व कर सकेगी, अहम् से अपना मस्तक ऊँचा कर सकेगी।

वृद्ध काफी देर तक सोई हुई युवती की नंगी छाती को देखता रहा। भाँति-भाँति की कल्पनायें करता रहा और अन्त में वहाँ से वापिस

अपने बिस्तरे पर आ गया। उसका मन भारी था।

अभी दो घड़ी भी बीतने न पाई थी कि वृद्ध फिर वहाँ से उठकर खिड़की के पास आया। इस बार वह युवती के ढके हुए चेहरे के रहस्य को जानने की लालसा लेकर आया था पर काफी प्रयत्न करने के बावजूद भी वह उसका चेहरा देखने में सफल नहीं हो सका, ऐसा मालूम पड़ता था कि सोई युवती का अचेतन मन भी इस रहस्य को गुप्त रखने में सजग था। निराश होकर वह पुन: बिस्तरे पर सा गया। नींद न आने की वजह से उसने उसी मेज़ पर से 'क्लारा जेट किने' द्वारा लिखित "स्त्री स्वतन्त्रता पर लेनिन के विचार" नामक पुस्तक उठाई और जहाँ उसकी नजर पड़ी वहीं से वह पढ़ने लगा।

"इस पानी के गिलास वाले सिद्धान्त को मैं बिल्कुल मार्क्स विरोधी समझता हूँ और वह असामाजिक भी है।......प्यास जरूर बुझानी चाहिये लेकिन क्या एक स्वस्थ आदमी स्वाभाविक परिस्थितियों में नाली में पड़कर गंदले पानी से या बहुत से लोगों के ओठों से जूठे गंदे गिलास से अपनी प्यास बुझायेगा ? किन्तु इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू सामाजक है। पानी पीने का मामला तो सिर्फ वैयक्तिक है, किन्तु प्रेम में दो जीवों का और नये पैदा होने वाले एक तीसरे जीव का भी सम्बन्ध है। इसलिए उसका एक विशेष सामाजिक महत्व है और उसमें समाज के प्रति एक उत्तरदायित्व है।"

वृद्ध नैतिकता सम्बन्धी मार्क्स वादी दृष्टिकोण पर ये पंक्तियाँ पढ़कर कुछ विचारने लगा। दृष्टिकोण बिलकुल स्वस्थ था और समाज के लिए कल्याणकारी।

पर अब उसकी आँखें उनींदी होने लगी थीं। उसने जम्हाई के साथ अपनी पलकों को धीरे-धीरे बन्द किया।

३
***

गिर्जे की घड़ी ने जब सात का घंटा बजाया तो युवती की नींद भंग हुई। उसने आँखें खोलते-खोलते सोचा—"उठने में बहुत देर हो गई है।"

धूप खिड़की की राह से फर्श पर बिखर गई थी। हवा के झोंको से सब पर्दा धीरे-धीरे हिल रहा था।

युवती ने एक बार यह सब देखा और अन्त में उसकी दौड़ती हुई नजर अपने बच्चे पर जम कर रह गई।

उसने बच्चे को उठाने के लिए अपनी बाहें फैलाई कि बच्चे ने निद्रावस्था में ही मुस्करा दिया। युवती ठिठक गई। उसने उसकी यह मुस्कराहट छीननी अच्छी नहीं समझी। साथ ही स्वयं युवती के होठों पर स्मित बिखर गई। उसके हृदय में बच्चे की इस मुस्कराहट के प्रति एक विश्वास सा जागा कि जरूर यह अभी स्वप्न के उस सुखी संसार में घूम रहा है जहाँ किसी प्रकार का दुख नहीं है। और युवती का मुँह बच्चे के गाल पर जा टिका। बच्चा अब भी मुस्करा रहा था।

वहाँ से युवती अपने बच्चे को देखती-देखती वृद्ध वाले कमरे में आई, पर वृद्ध पहले से ही बिस्तरा छोड़कर बाहर चला गया था। युवती ने चहार दीवारी के पास आकर सड़क की ओर अपलक दृष्टि से देखा—सड़क शून्य थी बिलकुल शून्य।

उसने मन ही मन कहा—'बाबा होता तो बच्चे के लिये दूध मँगवा लेती।" और वह गुसल-खाने में घुस गई।

लगभग पन्द्रह मिनट के बाद वृद्ध ने गुसलखाने के दरवाजे पर दस्तक दी, यह कहते हुए कि तुम्हारा बच्चा जग गया है, इसे दूध

पिला दो, मैं दूध ले आया हूँ ।

युवती कल की तरह अपने चेहरे को ढंके बाहर आई । अत्यन्त नम्रता से उसने निवेदन किया—"कुछ खाने को है बाबा ? मुझे भी भूख लगी है ।"

"पाव रोटी है, उस आलमारी को खोल कर निकाल लो ।" वृद्ध ने अपने लम्बे बालों को सहलाया—"नाश्ता करने के बाद तुम मेरे कमरे में आना । मैं तुम्हारी कहानी सुनूँगा । मेरी भी उत्सुकता अब बेचैन होने लग गई है ।.. ...आओगी न ?"

युवती ने हाँ के संकेत में सिर हिला दिया ।

वृद्ध मन ही मन मुस्कराता कमरे के बाहर हो गया ।

युवती अपने बच्चे को गोद में लेकर उसे चम्मच से दूध पिलाने लगी और खुद रोटी [खाने लगी । चम्मच की खट-खट की हल्की आवाज कमरे की मौनता भंग कर रही थी ।

४

***

जब युवती ने वृद्ध के कमरे में प्रवेश किया, उस समय वृद्ध आराम कुर्सी पर बैठा हुआ अपनी घनी सफेद दाढ़ी में से काले बाल निकाल रहा था । वह एक काले बाल के तोड़नें में इतना तन्मय हो गया था कि युवती की उपस्थिति का भी उसे आभास नहीं हुआ । कुछ अर्सा युवती ने यह विचारने में गुजार दिया कि यह कितना विचित्र व्यक्ति है कि अपने काले बालों को तोड़ रहा है । अक्सर मैंने काले बालों में से सफेद बालों को तोड़ने वाले बहुतेरे देखे हैं या सफेद बालों को खिजाब से काला या भूरा करने वाले भी मेरी दृष्टि में कई व्यक्ति आये हैं, पर सफेद बालों

में से काले को निकालना जरूर ही एक ताज्जुब की हरकत है।

वृद्ध ने बड़ी चेष्टा करने के बाद उस बाल को तोड़ ही लिया। अपनी सफलता पर वह मन ही मन मुस्कराया। उसकी आँखों में विजय चमक उठी।

"बाबा —" युवती ने उसके ध्यान को भँग किया।

"कौन...!...तुम !...आओ, और वह कुर्सी खींच कर मेरे सामने जाओ।" वृद्ध का हाथ कुर्सी की ओर उठा हुआ था।

युवती कुर्सी खींच कर उसके सामने बैठती हुई मृदुस्वर में बोली... "तुम वास्तव में बड़े अजीब आदमी हो !"

"कैसे ?"

"तुम सफेद बालों में से...।"

"ओह ! वृद्ध ने हँसकर कहा — "दुनिया में हर मनुष्य अपने को सुन्दर देखना चाहता है। अपने में आकर्षण उत्पन्न करने की भावना मनुष्य में सदा से रही है और वह स्वाभाविक भी है। यही वजह है कि मैं अपनी सफेद दाढ़ी को भी उतना आकर्षित देखना चाहता हूँ, जितना कि एक जवान युवती अपने खूबसूरत चाँद से मुख पर छाए काले बालों को।"

युवती इस युक्ति पर कहना चाहती थी कि तुम बहुत ही छोटी प्रकृति के आदमी हो, वृद्ध हो गए पर अभी भी प्रशंसा के भूखे हो लेकिन उस ने अपना आश्रयदाता समझ कर वह उसका लिहाज कर बैठी। झूठ ही चापलूसी से बोली—"आप के विचार सच्चे और निर्भीक हैं।"

"चापलूसी कर रही हो !"—वृद्ध ने तपाक से उस के मन के भाव को ताड़ते हुए कहा।

"नहीं तो।" युवती का चेहरा शर्म से झुक गया।

"शर्मा गई, खैर जाने दो इन फालतू बातों को," "अच्छा, सब से पहले तुम मुझे यह बताओ कि तुम्हारा नाम क्या है ?"

'अमृत।"

"अमृत।"—वृद्ध ने मन ही मन उस के नाम को दोहराया और अपने आप से बोला—"नाम तो सुन्दर है।"

अमृत का चेहरा दुख से झुक गया। वृद्ध ने यह सोच कर कि शायद यह अपनी कहानी मुझे दबाव से सुनाना चाहती है पर अपने दिल से नहीं, इसलिए उस ने उस की स्थिति को साफ कर दिया—"यदि तुम्हें अपनी कहानी सुनाने में किसी प्रकार का एतराज हो तो तुम न सुनाने के लिए स्वतन्त्र हो। मैं यह नहीं चाहता हूँ कि तुम्हारे पुराने घाव पुरानी स्मृतियाँ फिर हरी हों। वे उन्हें मार्मिक पीड़ा पहुँचाए और तुम एक नादान बच्चे की तरह करुण विलाप करो।

"तुम्हारा कहना सही है कि मुझे अपनी पुरानी बातें बताते दुख अवश्य होगा पर मेरी कहानी तुम्हारे जैसे लेखक की कलम द्वारा पन्नों पर उतर कर चिर महत्व प्राप्त कर सकती है क्योंकि वह समाज के उस खोखले पहलू पर प्रकाश डालती है जहाँ नारी नाम की संज्ञा मोमबत्ती की भाँति जलती है। जहाँ परिस्थितियों के वश में मनुष्य महादान भी दे सकता है आगे परिणाम की चिंता किए बिना ही।··· इस लिए मैं अपनी कहानी तुम्हें सुनाऊँगी ही।'

वृद्ध बिल्कुल गंभीर होकर बैठ गया।

अमृत ने दीवार पर लगे प्रसिद्ध चित्रकार रामगोपाल विजयवर्गीय की राजस्थानी कलाकृति पर दृष्टि जमाते हुए कहना शुरू किया—

'बचपन फूल की तरह कोमल और नवजात शिशु की तरह निर्दोष होता है।···मेरा बचपन भी ऐसा ही था। माँ मुझे लाडली कहती थी और पिता प्यार में मुझे बिल्ली कह कर पुकारा करते थे। बिल्ली नाम मुझे बहुत बुरा लगता था। भला तुम्हीं सोचो बाबा, एक बच्ची अपने लिए एक जानवर का नाम कैसे सह सकती है?" जानवर भी कैसा, बिल्ली?

वृद्ध ने अमृत की ओर देखा। अमृत की आँखों में बाल-स्वभाव

जनित शिकायत थी।

"और मेरे पिता जी बिल्ली की तरह आंखें फाड़ कर मुंह को बिगाड़ कर, बिल्ली की तरह गुर्रा कर लंबे स्वर में कहते—"बिल्ली।" तब मुझे बेहद बुरा लगता था और मैं माँ से जा कर शिकायत कर देती थी।

मेरी माँ का स्वभाव मेरे प्रति बहुत ही सरल और मधुर था, पर पिता जी के प्रति चिड़चिड़ा। वह पिता जी की प्रत्येक बात पर फटे ढोल की बज उठती थीं और उस के विपरीत मेरे पिता जी उतने ही नम्र तथा मधुर होते थे। मैं इस का कारण समझने का प्रयास करती थी पर असफल रहती थी लेकिन मुझको माँ का यह बर्ताव अच्छा नहीं लगता था। कभी कभी मैं पूछ बैठती थी कि आखिर तुम पिता जी को बात-बात पर क्यों डाँट देती हो ? तो माँ मेरी ओर गुस्से की नजर देखा करती थी और आगे के लिए चेतावनी देती थी कि वह कभी भी इस प्रकार के सवाल न करे।···एक बार इसी सवाल को ले कर उसने मुझे पीट भी दिया था। तब से मेरे हृदय में भय उत्पन्न हो गया और मैंने फिर कभी भी इस प्रश्न को पूछने का साहस नहीं किया।

मैं बचपन में बहुत ही नटखट थी। मेरे नटखटपन से घर तंग था। कभी इस को तोड़ा तो कभी उस को गिराया, यह मेरा स्वभाव बन गया था। हाँ ! स्कूल का नाम सुन कर मैं सिर पर आकाश उठा लिया करती थी। पिताजी भाँति-भाँति के प्रलोभन देते थे पर मैं स्कूल जाने का नाम तक नहीं लेती थी। इस से पिता जी की आत्मा को अत्यन्त कष्ट होता था। वे मुझे स्कूल में दाखिल करने के लिए तरह तरह के उपाय सोचने लगे। उनकी आत्मा को कष्ट होना भी स्वाभाविक ही था। क्योंकि आज के युग में युवतियों की अशिक्षा उनके भावी जीवन में कितनी विकट समस्या पैदा कर देती हैं, यह हर समझदार माता-पिता जानते हैं। पर मुझे स्कूल जेल से भी अधिक भयंकर लगती थी, जहाँ

मैं समझती थी कि मेरी जरा जरा सी भूल पर मुझे पशु की तरह डण्डे से पीटा जाएगा। मुझे बात-बात पर डाँटा जाएगा।

समय पहले की तरह गुजरता गया।

मेरी पड़ोसिन बेला के विवाह का दिन आया। बेला मुझसे दस साल बड़ी थी। उसके विवाह को देखकर मेरे मन में बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसके घर के आगे जलसा हुआ था। हरे, नीले और लाल बल्ब लगाये गये थे। लाउड स्पीकर लगाये गये थे। इन सबको देख कर मुझे आन्तरिक सुख हुआ और भागती-भागती अपने पिता जी के पास गई। पर देखा कि पिता जी अपने मित्र के साथ कुछ गम्भीर बातें कर रहे हैं,। मैं ठिठक कर दरवाजे पर खड़ी हो गई।

पिता जी ने तुरन्त मेरे भावों को ताड़ते हुए मुझे अपने समीप बुलाया—"क्या बात है बिल्ली ?"

मैं धीरे-धीरे शंका भरी नजर से दोनों को देखती हुई पिता जी के पास खड़ी हो गई। पिता जी ने मेरी ठोढ़ी को पकड़ते हुए पुचकार कर पूछा—"कुछ कहना चाहती हो बिल्ली ?" और उन्होंने अपने मित्र की ओर देख कर उन्हें मेरा परिचय दिया—"यह मेरी राजा बेटी बिल्ली है, ठीक बिल्ली की तरह शैतान और दूधपीऊ।"

मैंने नाराजगी से अपने पिता जी की ओर देखा।

पिता जी ने मुझे अपनी बाहों में उठा कर गोद में बिठा लिया और दुबारा पूछा—"बोलो बिल्ली रानी आप का यहाँ आना कैसे हुआ ?"

"बापू ! बेला का ब्याह है।"

पिता जी ने मुस्कराते हुए पूछा—"तू भी ब्याह करेगी ?"

"हाँ !" मैंने सिर हिला कर कहा।

"पर तेरे से ब्याह करेगा कौन, तू पढ़ती-लिखती तो कुछ है नहीं।...आजकल गँवार लड़कियों को दूल्हे बड़ी मुश्किल से मिलते हैं।"

यह सुन कर मैंने अत्यन्त भोलेपन से अपने पिता जी की ओर देखा और मेरे पिता जी ने अपने मित्र से यह प्रश्न किया—"क्यों राममनोहर

जी, आप अपने लड़के के साथ ऐसी अनपढ़ और फूहड़ छोकरी की शादी करायेंगे ?"

"नहीं जी, हम तो उसी छोकरी से अपने छोकरे की शादी करायेंगे जो स्कूल जाती हो, खूब पढ़ती हो।"

मैंने खुशी से उछलते हुए तपाक से कहा—"मैं पढ़ूंगी।"

"तब हम तुम्हें अपनी बहू बना लेंगे।"—राममनोहर जी ने मेरे गाल पर हल्की चपत जमाते हुए कहा।

मैंने भागकर अपनी माँ को यह खबर सुनाई।

माँ ने मुझे छाती से चिपका कर कई बार चूम लिया।

५

***

"अशेष के सामने एक नंगी औरत खड़ी थी। उस नंगी औरत का बदन बहुत ही माँसल था और आकर्षक भी। अशेष उसके अंग-प्रत्यंग को भली-भाँति गौर से देख रहा था और उसे चित्र का रूप दे रहा था।

यह नंगी औरत 'मॉडल गर्ल' के नाम से पुकारी जाती थी और अशेष एक समझदार चित्रकार।

वह नारी-सौन्दर्य का पुजारी था। वह अपने चित्रों में नारी सौंदर्य के सत्य की अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण करना चाहता था। इसी कारण वह इस नंगी औरत को हर मॉडल के दस रुपये उसकी मेहनत की मजूरी दिया करता था। इस नंगी औरत का नाम अर्चना था। बँगालिन थी। अपनी बेवा माँ की बड़ी बेटी। शेष उसकी दो छोटी बहिनें घर में संगीत और नृत्य की शिक्षा ले रही थीं। स्कूल में पढ़ भी रही थीं।

अभी दोपहर था। अशेष के कमरे में पंखा चल रहा था तो भी

उसके ललाट पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। ये पसीने की बूंदें उसके कार्य के एकाग्रिता की प्रतीक थीं।

वह ग्राह्य दृष्टि से अर्चना के नंगे बदन को देख रहा था, देख कर उसे हूबहु चित्र का रूप दे रहा था। चित्र का ऊपरी भाग बिल्कुल तैयार हो चुका था, नीचे के हिस्से के निर्माण के लिए ज्यों ही उसने अपनी तूलिका चलाई कि अर्चना खिलखिला कर हँस पड़ी।

उसकी इस हँसी ने अशेष को चौंका दिया। अशेष कुछ बोले, इसके पहले ही अर्चना ने उसकी हाथ की तूलिका छीन ली। उसे मेज पर रखती हुई बोली—"अब बस करो अशेष।"

"क्यों ?"—कुछ हैरान हो गया अशेष।

"अब तुम थक गये हो इसलिए, और तुम्हारे हाथ भी काँपने जो लगे हैं।" अर्चना ने नैन मटकाते हुए कहा और अपने वस्त्र पहनने शुरू कर दिये।

"तुम्हारे कहने से।" अशेष के स्वर में जरा नाराजगी थी। तुम व्यक्ति के 'मूड' को नहीं समझती, तुमने मेरा सारा मूड खराब कर दिया।

"मैंने या तुम्हारी भावना ने ?" अपने बालों को सँवारते हुए अर्चना ने व्यंग किया।

"तुमने।"

"झूठ ! मैंने कैसे किया ?···अशेष ! नारी के नग्न-रूप का दर्शन अल्पकाल के लिए विचार-प्रेरक होता है और इसके पश्चात पतनोन्मुखी।···पर तुम सच्चाई से कहो कि क्या तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति वासना की भावना पैदा नहीं हुई ?" अर्चना का मुँह अशेष के मुँह के सन्निकट था।

अशेष ने सँभलते हुए कहा—"नहीं।"

"फिर तुम्हारी निगाह और हाथों में वह तन्मयता क्यों नहीं थी जो पहले-पहल थी ?" अर्चना ने अपना मुँह दूसरी ओर घुमा लिया।

"वह इसलिये कि···।" अशेष की जबान रुक गई। उसकी नशीली सी आँखें अर्चना की आँखों से टकरा गईं जिनमें हल्का सन्ताप था।

अर्चना ने भावुकता से तड़प कर अशेष का हाथ अपने हाथ में में लेते हुए कहा—"इसलिए कि तुम नारी के उस अंग का चित्रांकन करने सदैव काँप जाते हो, जिससे सृष्टि का सृजन होता है।"

"नहीं।" दृढ़ता से उत्तर दिया अशेष ने—'यह तुम्हें भ्रम है, मेरे जीवन में तुम जैसी एक नहीं, कितनी लड़कियाँ हैं जो अपनी मँजूरी के बदले अपने मॉडल दिया करती हैं, किन्तु···।" अशेष के नयनों में आश्चर्य पैदा हुआ, स्वर की गति में धीरापन—"न जाने मैं तुम्हारा पूर्ण मॉडल क्यों नहीं बना सकता। मेरे दिमाग में एक विचार सा उठता है कि तुम्हारे शरीर की नग्नता छद्म रहे। यह सच है कि वह प्रगट होकर साधारण जनता के सामने मेरी कला की महानता अवश्य बन जायेगी पर तुम्हारा सौन्दर्य जिसके प्रति हर परिचित अपरिचित का मोह है, क्या बाजारू नहीं बन जायेगा? क्या उसका मूल्य केवल पैसा नहीं रह जायेगा?" अशेष का स्वर आवेश पूर्ण हो गया। तुम्हारा यह वाह्य सौन्दर्य जो तुम्हारी आत्मा के सौन्दर्य की छाया है, का मूल्य क्या इतना ही नहीं रह जायेगा कि इसका सौन्दर्य पैसों के बदले खरीदा जा सके।···सोचो न अर्चना, क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ?"

अर्चना की आँखें फर्श की ओर झुक गई थीं। उसका चेहरा उदास हो गया था, जैसे सलोने चाँद-से मुख पर व्यथा काली-घटा की तरह छा गई हो।

अशेष ने अर्चना की ठोढ़ी को पकड़ कर उसके चेहरे को अपने सम्मुख किया। थोड़ी देर पहले नंगी होकर अपने शरीर का नक्शा उतराने वाली अर्चना लज्जा से मरी जा रही थी और जब अशेष ने अपने अन्तिम वाक्य को दोहराया—"क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ।" तो वह सिसक पड़ी।

"शायद तुम्हें मेरी बातों से ठेस लगी है। मुझे क्षमा कर दो

अर्चना !···रही सृष्टि-सृजक अंग के चित्रांकन की बात, मैं अपनी कला को इतना नंगा रूप नहीं दे सकता ? उसके चित्रांकन की कोई आवश्यकता ही नहीं। कला तो नग्नता के आवरण का काम करती है।" कहकर अशेष ने अपनी कमीज की जेब से दस रुपये का एक नोट निकाल कर अर्चना के हाथ में थमा दिया। अर्चना ने अशेष को जलती हुई निगाह से देखा। क्रोध से उसकी मुख-मुद्रा अजीब ढंग की हो गई। उसने नोट को जोर से अशेष के चेहरे पर फेंका और हवा की तरह कमरे के बाहर निकल गई।"

जाती-जाती अर्चना स्वतः बड़बड़ा रही थी—"छली कहीं का। प्रेम भी करता है और पैसा भी देता है। मुझे उल्लू बनाता है,···झूठा, धूर्त।"

"बाहर निकलती हुई अर्चना को मैंने देखा। उसकी बदली हुई आँखों ने उसकी बड़बड़ाहट ने मेरे अन्तर में सन्देह पैदा कर दिया।···"बाबा ! एक बिजली सा विचार मेरे मस्तिष्क में कौंध गया—जरूर अशेष ने इस लड़की के साथ छेड़खानी की है।"

मैं भीतर घुसी। सब से पहले मेरी निगाहें दस के मुड़े हुए नोट पर पड़ीं। मेरा सन्देह सत्य की ओर बढ़ा।···अशेष का इतना बड़ा पतन हो जायेगा, इसका मुझे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था।

और अशेष की भय तथा विस्मय भरी आँखें क्षण भर के लिए मेरे वस्त्रों पर जम गईं। मेरा एकाएक उपस्थित हो जाना, उसे वक्र व क्रोध दृष्टि से देखना, इन दोनों की ऐसी प्रतिक्रिया हुई जैसे कोई अशेष पर अचानक आक्रमण कर बैठा हो और अशेष प्रत्याक्रमण के लिए सँभले, इसके पहले वह उस पर हावी बन जाता हो।···वह आत्मग्लानि से मरा जा रहा था। उसने जरूर सोचा होगा कि अमृत को जरूर कोई अक्षम्य भयंकर शक हो गया है।···उसने नादान भयभीत बालक की तरह अपनी नजर उठा कर मेरे वस्त्रों पर जमा दी।"

उस रोज मैंने नीली पोशाक पहन रखी थी। अशेष ने एक बार

मेरे चेहरे को डरते-डरते गौर से देखा और फिर अबोध की तरह पलकों को झेंपा कर बोला—"क्या बात है अमृत ?"

"यह लड़की कौन थी ?"—मैंने तपाक से पूछा ।

"अर्चना ।"

"क्या करती है ?"

"मॉडल गर्ल है ।"

"यह इतनी लाल-पीली होकर तुम्हारे कमरे से बाहर क्यों निकली थीं ?"

"मेरे मुँह से उस के प्रति कुछ कठोर शब्द निकल गए थे ।"

"अथवा ?"

"मैंने कुछ कटु सत्य बातें उसे कह दी थीं,···यही उस के इस पेशे के बारे में । तुम तो जानती हो न अमृत कि मैं भावुक हूँ और यह भावुकता···।"

"······कभी-कभी मुझसे न करने योग्य काम भी करवा लेती है । क्यों ठीक है न ?"—अमृत ने बीच में ही बोल कर अपने मन के आक्रोश को निकाला ।

"तुम्हारा अन्दाज गलत है । मेरे बारे में इस प्रकार का गलत निर्णय करना, मेरी आत्मा के लिए दुखदायी सिद्ध हो सकता है ।"

"अशेष ! आखिर यह तो मेरा अन्दाज है ।"—मैंने जरा बनावटी नखरे से कहा । मेरा सारा गुस्सा हवा हो गया था । क्योंकि मैं किसी सन्देह के सत्य को जान कर सारा मनमुटाव तुरन्त भूल जाती थी, यह मेरी आदत थी । लेकिन अशेष पूर्ववत गंभीर बना रहा—

"यह अन्दाज जब आवाज का रूप धारण कर लेता है तो बेइज्जती का साधन बन जाता है ।"

दीवार में लगे स्वनिर्मित चित्रों को देखता हुआ वह कहता ही जा रहा था—गत एक युग का साथ भी तुम्हें मेरे अन्तःकरण को समझने की योग्यता प्रदान नहीं कर सका, इस की मुझे हार्दिक वेदना है ।" और

वह मेरी ओर मुखतिब हो कर बोला ।

"अमृत ! तुम हमारे इस स्कूल कालेज के जीवन को अपने प्यार का रंगस्थल समझती होगी ।'''तुम्हारा यह दावा भी होगा की अशेष उसका अपना है । वह तुम से हार्दिक प्यार करता है और तुम भी मुझ पर अपना सर्वस्व विसर्जन करती हो ।'''पर मैं तुम्हें आज सब से बड़ा रहस्य बताने जा रहा हूँ—" कह कर अशेष चुप हो गया । मेरा दिल हर तरह के संकल्पों-विकल्पों से धड़कने लगा । मेरी हालत उस परीक्षार्थी की तरह थी जिस का परीक्षाफल अभी-अभी निकलने वाला है । मैं जड़ सी अचल खड़ी, अशेष की ओर ताकने लगी । अशेष ने मेरे हाथ को अपने हाथ में लेते हुए कहा ।

'अमृत ! वास्तव में तुम्हें प्यार करता हूं । तुम्हारा यह अनुपम सौन्दर्य ही मेरे आकर्षण का केंद्र-बिन्दु है । जब तक यह सौन्दर्य है तब तक मैं तुम्हें प्यार करता रहूँगा ।"

मेरा-अँग अंग खुशी से नाच उठा । मेरा मस्तक अपनी आत्म-प्रशंसा सुन कर गर्व से फूल उठा । मैंने एक बार अपने वस्त्रों को देखा कि कहीं से वे ढीले और अव्यवस्थित तो नहीं है ? पर वे मेरे ढाँचे के अनुरूप कसे हुए थे । मैंने पुनः अपनी नजर अशेष पर जमा दी ।

"अमृत ! मैं तुम्हारे पिता जी से अपने विवाह की बातचीत करने तुम्हारे घर आऊँगा । मुझे पूरा विश्वास है कि तुम भी यह खबर सुन कर खुश होवोगी ?"

मैं भावातिरेकता के कारण बोल नहीं सकी । शर्मा जरूर गई थी । चाहती थी कि यहाँ से उठ कर भाग जाऊँ या अपने दोनों हाथों में अपना मुँह छिपा लूं पर मैं कुछ भी नहीं कर सकी । पूर्ववत बैठी रही । मै यह भी भूल गई थी कि मैं अभी अशेष के पास क्यों और किस लिए आई हूँ ? मैं तो भावुकता में बही जा रही थी । अशेष का एक-एक शब्द जिंदगी सा मेरे कानों में पड़ रहा था । अशेष मुझे एकटक निहारता रहा'''तब मुझे यकायक ध्यान आया कि मैं आज दोपहर को

अशेष के पास इस लिए आई हूं कि वह यह जान पाए कि मैं कल सवेरे शिमले जा रही हूँ।

"बाबा !—अमृत ने अपने ढँके हुये मुंह को वृद्ध की ओर घुमा कर कहा—"कितना संकट काल था वह ? अशेष कल मेरे मन की साध पूरी करने के लिए मेरे बापू के पास जाने वाला था और हम कल एक रिश्तेदार की शादी में शिमले जा रहे थे। कैसा संयोग था ? मैंने बड़ी मुश्किल से कहा—"अशेष ! कल तो हम शिमले जा रहे हैं।"

इस वाक्य से अशेष के चेहरे पर उदासी छा गई। वह निराशा से बोला—कब तक आओगी ?"

"दस पन्द्रह दिन में।"

"मैं तो डर गया कि कहीं'''। तब तो मै बाद में ही पक्की कर लूँगा।"

उसे तुम पक्की ही समझो।"

"ऐसा तो समझता ही हूँ।" —उस ने मेरा हाथ पकड़ा।

मैंने हाथ छुड़ा कर कहा—"शाम को पार्क में मिलोगे ?"

अशेष ने उस का उत्तर न दे कर मुझे कनखी मारी और मै हूँ' कर के कमरे से बाहर हो गई।

शाम का धुंधला प्रकाश शहर के पूर्वी कोने से धीरे धीरे उठने लग गया था। परन्तु इस से शहर के कोलाहल में जरा भी फर्क नहीं आया था। बड़े शहरों का वातावरण आधी रात के बाद ही शान्त होता है। वह भी थोड़ी देर के लिए। हाँ, पक्षी जरूर अपने-अपने घोंसलों की ओर जा रहे थे। हवा की गति में कोई फर्क नहीं आया था।

"मैं ईडन गार्डन के दक्षिणी सिरे पर स्थित झील के पश्चिमी छोर पर बैठी अशेष की प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे एकाकी देख कर प्रत्येक व्यक्ति की निगाहें क्षण भर के लिए मेरे चेहरे पर जम जाती थी। उन तमाम व्यक्तियों की निगाहों में मेरे सौन्दर्य को काट खाने की भावना थी। मैंने उनमें से कइयों को ऐसा कहते हुए भी सुना। कदाचित उनके इस कथन में यह मजबूरी थी कि वे मेरे सौन्दर्य को

पाने में सर्वथा असमर्थ थे। अत: मन को तसल्ली देने के लिए वे इस प्रकार की पंक्तियाँ कह रहे थे। कुछेक व्यक्ति जान-बूझ कर मेरे समीप ही आकर थोड़ी देर के लिए बैठ जाते थे और वे इतनी गंभीरता से अपनी-अपनी प्रेमिकाओं की चर्चा करते थे जैसे, वे उन्हीं परम्परा के महान प्रेमी हैं जिस परम्परा में मजनूँ, फरहाद, महिवाल, राँझा और जूलियट आते हैं। पर उनकी इस प्रेम-वार्ता का अन्त बहुत ही निम्न कोटि का होता था। ऐसा मालूम पड़ता था कि ये लड़के प्रेमी नहीं आवारा और मक्कार हैं। वे सिर्फ मुझे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए इस प्रकार जोर-जोर की बातें कर रहे हैं।"

अमृत ने एक लम्बी साँस ली—'उस दिन एक बहुत ही विचित्र घटना घटी। मेरा पड़ोसी चिमन भाई जो गुजराती था, एक छोकरी को लिए पार्क में टहल रहा था। मैं बिल्कुल अच्छी तरह जानती थी कि चिमन भाई के घर में सिवाय घरवाली के और दूसरी कोई भी औरत नहीं, फिर यह लड़की...... ? मेरे मस्तिष्क में कई प्रश्न उठे और मिटे। पर जब मैंने देखा कि चिमन भाई उस लड़की का हाथ अपने हाथ में लेकर रोमान्टिक पोज बना रहे हैं तो मैंने तुरन्त यह निर्णय किया कि यह उनकी···मुझे यह खबर चिमन भाई की बहू तक पहुँचा ही देनी चाहिए। नहीं तो वह सीधी-सादी औरत बरबाद हो जायेगी।

मैंने यह खबर चिमन भाई के बहू को नमक-मिर्च लगा कर सुना दी। मैंने अत्यन्त सहानुभूति से कहा—"देखिए बहिन जी,[1] मैंने भैया को एक आवारा लड़की के साथ देखा है।"

"जरूर देखा होगा, तभी तो आजकल वे मुझसे ऊबे-ऊबे से रहते हैं।" उसके स्वर में नाराजगी थी।

"लड़की बहुत ही सुन्दर थी।" मैंने आँखें फाड़कर कहा।

"मुझसे भी ?" बहन जी की आँखों में विस्मय नाच उठा। और मुझे बहिन जी के इस प्रश्न पर मन ही मन हँसी आ गई। मैंने हँसते

१ गुजराती स्त्रियाँ अक्सर पड़ोसिनों को बहिन जी कहती हैं।

हुए कहा—"आपसे चार चंदा बेसी है !" भैया तो उसके साथ मटक-मटक कर चल रहे थे। पहले तो मुझे भ्रम हुआ है कि वह युवती आप ही होंगी पर बाद में मेरा भ्रम जाता रहा, क्योंकि वह युवती आपसे अधिक सुन्दर थी।"

'कैसा रंग था ?"

'आपका जले हुए तवे का उल्टा पासा है और उसका साफ किए हुए तवे का सीधा पासा, पर थे दोनों तवे के पासे ही।"

मेरे इस व्यंग्य से बहिन जी नाराज हो गईं। मुझे कुछ भी भला-बुरा न कह कर वह चिमन भाई को कोसने लगी।

अमृत ने बाबा को सम्बोधित किया—"और बाबा ! रात को बहिन ने चिमन भाई के सिर पर लकड़ी को दे मारी जिससे उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। तब मुझे अपने इस बुरे काम के लिए बड़ा खेद हुआ।"

अमृत इस घटना के अन्त का वर्णन करके वापिस उस प्रसंग पर आई, जहाँ वह अशेष की प्रतीक्षा बड़ी आकुलता से कर रही थी। अमृत की आँखों में प्रकम्पन क्षणिक हुआ। वह बोली—

"मैं अशेष की प्रतीक्षा में बेचैन थी। हर क्षण मुझे पहाड़ सा लग रहा था। उसके बिना मुझे सब कुछ सूना-सूना सा लग रहा था कि मुझे अशेष आता सा दिखाई दिया। मेरी आँखें खुशी से चमक उठीं।

अब रात हो चुकी थी। सरकारी बत्ती हमसे काफी दूर पर थी। अतः अब दूर के आदमी हमें अच्छी तरह से नहीं देख सकते थे।

अशेष मेरे पास आया। मैंने उसके बैठने की प्रतीक्षा किए बिना ही पूछा 'इतनी देर क्यों कर दी ?"

"नहीं तो।"

'यह तो इस बढ़ते हुए अँधेरे से पूछो।"

"हर प्रतीक्षा करने वाले को पल घंटों सा ही लगता है।"

"नहीं, हर देर से आने वाला यहा रटा- रटाया वाक्य कहता है।"

"मतलब यह हुआ कि प्रतीक्षा करने वाला और प्रतीक्षा कराने

वाला दोनों अपराधी हैं !"

"नहीं प्रतीक्षा कराने वाला विशेष अपराधी ।"

"यह तो तुम्हारा हठ है, खैर हम ही अपराधी सही ।"

और अशेष बैठ गया ।

अब वह मेरे हाथ को अपने हाथों में लिए सहला रहा था । मेरी रग-रग में कम्पन सी दौड़ रही थी । अशेष कह रहा था—"तुम्हारे बिना दिन बड़ी मुश्किल से कटेंगे ।"

मैं उसके इस कथन पर मन ही मन फूल उठी ।

"जरा जल्दी आने का प्रयत्न करना । अब मेरा मन तुमसे अधिक दूर नहीं रह सकता ।

"क्यों ?"

"तुम्हारे बिना अपने को अपूर्ण समझता है ।"

"तुम मुझे इतना चाहते हो ?"

"तुम्हें नहीं, तुम्हारे इस सौन्दर्य को । मैं झूठ बोलने का आदी नहीं हूँ, यदि तुम इतनी सुन्दर नहीं होती तो मैं तुम्हें शायद ही इतना प्यार करता ?"... अशेष का स्वर भारी हो गया—"मैं सौन्दर्य का पुजारी हूं, वह भी नारी-सौन्दर्य का।...आत्मा के सौन्दर्य पर मुझे कोई विश्वास नहीं है । मैं उसी सौन्दर्य पर अपनी समस्त भावनाओं को न्यौछावर करता हूँ जिसे मैं स्पर्श कर सकता हूँ, भोग कर सकता हूं।"

"पर कभी-कभी तो तुम आत्मा के सौन्दर्य की भी दुहाई लगाते हो फिर ऐसा क्यों करते हो ?" थोड़ा सा गँभीर होकर मैंने पूछा ।

"मनुष्य की यह स्वभाविक दुर्बलता है कि वह परिस्थितियों के साथ अपने आपका एक नया परिचय दे ।...पर अभी मैं जो तुम्हें बता रहा हूं, वे भी मेरे सच्चे गुण हैं ।...अमृत! प्यार हृदय को जीतता है और सौन्दर्य मस्तिष्क को । सफल वही होता है जो मस्तिष्क को जीत ले, विचारों को अपने काबू में कर ले । हृदय केवल धड़कता है और मस्तिष्क दौड़ता है और...।"

"और अब तुम अपनी इस बकवास को बन्द करो ।" मैंने उसे बिलकुल रोकते हुए कहा—"इन बातों से मेरा मस्तिष्क भारी हो जाता है, ऊब उठती हूँ। क्योंकि ये बहुत नीरस बातें हैं। चलो, कहीं होटल में चाय पियें ।".

हम दोनों चले। सारे रास्ते हम चुप थे। अशेष क्या सोच रहा था, मैं कह नहीं सकती पर मैं यह सोच रही थी कि इस विवाद का अन्त बहुत ही भयानक हो सकता था। विवाद में पक्षी-विपक्षी इस बात के प्रयास में रहता है कि एक-दूसरे को दबायें और दबाना कभी-कभी बहुत ही भयानक परिणाम से टकराता है ।

मैंने अपने आपको इस मानसिक द्वन्द से बचाया तो मुझे बरबस अर्चना याद हो उठी। उसके याद आते ही उसका बिजली की तरह अशेष के कमरे से तेजी से बाहर निकलना, उसकी घबड़ाहट, उसकी बड़बड़ाहट के रोष भरे शब्द सबके सब मेरे सामने नाच उठे। मैंने कई बार निश्चय किया कि मैं अपने मन की बातों को अशेष के सामने रख दूँ पर न जाने मैं ऐसा क्यों नहीं कर सकी ।

जब हम होटल से पचास कदम दूर रहे तो मैंने अपने को एक पत्नी की हैसियत में रखते हुए कहा—"फिर भी अशेष तुम्हें, इस मॉडल गर्ल से बचना चाहिये। यह उस वेश्या से कम नहीं है जो प्रेम भी करती है तो केवल पैसों के लिए।"

अशेष ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

"तुम बोलते क्यों नहीं !"

"बात यह है अमृत, कि अब बिना चाय पिये, मामला जमता नजर नही आ रहा है।...पहले चाय की घूंट हलक से उतरने दो फिर तुम्हारे सवाल का जवाब दूँगा।"

होटल आ गया था !

एक बार अशेष ने होटल पर लगे बोर्ड को निरुद्देश्य पढ़ा और फिर अमृत का हाथ पकड़ता हुआ प्राइवेट केबिन में जा घुसा। उसके

सामने अमृत बैठी थी और वह उसे भूखी निगाहों से घूर रहा था।

"ऐसे क्यों घूट रहे हो ?"

"सी ई ऽ ऽ ऽ, ब्वाय आ रहा है।"

अमृत झेंप गई। ब्वाय दो कप चाय रखकर चला गया।

अशेष ने चाय की चुस्की लेते हुए दार्शनिक भांति अपनी आँखों को ऊपर की ओर उठाते हुए कहा—'तो तुम कह रही थी कि वह वेश्या से कम नहीं है जो प्रेम भी करती है तो केवल पैसों के लिए। अमृत ! अव्वल तो कोई मुझसे प्यार इसलिए नहीं करेगा क्योंकि मेरा और तुम्हारा प्यार सर्व प्रचारित है। इस पर मैं तुम्हें छोड़ कर किसी और के प्रेम जाल में फँस ही नहीं सकता।... बीच में मत बोलो, पहले मुझे कहने दो,...प्रेम क्या नारी क्या नर हर एक के जीवन में एक बार ही सही रूप में आता है, शेष तो प्रेम के नाम पर एक उद्दाम है।... अर्चना ! एक गरीब और परिस्थितियों की सताई वह युवती है जो जरा भी सहानुभूति दिखानेवाले के प्रति अपना सर्वस्व समर्पण कर सकती है।...यह उसके मन की दुर्बलता है।... न वह वेश्या है और न उसका प्यार पैसों के लिये पैदा हुआ है। हाँ उसके जीवन के अभाव शायद तुम्हारे आरोपों को सत्य का रूप दे सकते हैं, पर उसमें अर्चना का दोष नहीं, दोष है उसकी अपनी परिस्थिति का। तभी तो मैं उसे कड़वी बातें कहकर उसके सम्मान को जगाने का प्रयास करता हुँ ताकि वह भी हमारी तरह इन्सान बन सके।"

अशेष के चुप होते ही अमृत ने एक लम्बी उश्वास छोड़ी जैसे वह उपदेश सुनते-सुनते थक सी गई हो। 'मैं अपने शब्द वापस लेती हूँ।"

तब हँसकर अशेष ने कहा—'मान गई न मुझे कि मैं हिटलर की तरह प्रभावशाली भाषण दे सकता हूँ।"

और दोनों की आँखें एक पल के लिए टकरा गईं।

७
***

"शिमले का वातावरण मुझे बेहद पसन्द आया। यहाँ के फैशन-परस्त निवासियों का जीवन मुझे बहार की तरह झूमता हुआ नजर आया। मुझे ऐसा महसूस होता था कि यहाँ का हर इन्सान सुखी और समृद्ध है। यहाँ की सभ्यता दकियानूसी विचारों से दूर एक नये विश्वास पर जिन्दा है।

हम अपने रिश्तेदारों के बहुत ही प्रिय पात्र थे। वे हमें सिर-आँखों पर रखते थे! मालरोड पर उनकी अपनी अच्छी कोठी थी और उनका परिवार भी काफी एडवांस था।

विवाह के कार्यक्रम से निवृत होने के पश्चात मेरा एक ही काम रह गया था, घूमना-फिरना। इसमें मुझे सहायक मिली, मेरी नव परिचिता सहेली नीरा। नीरा का सौन्दर्य भी अप्रतिम था। उसकी समुद्र सी गहरी-नीली आँखें हर किसी का मन मोह लेती थीं। इतनी बातूनी थी कि पल भर भी चुप रहना उसके लिये दूभर था। साथ ही उसकी बातें इतनी मजेदार होती थीं कि सुनते-सुनते दिल ऊबता भी नहीं था।

उसी नीरा ने मेरा परिचय कराया मंगल से।

बाबा! मंगल ने मेरे जीवन में सावन की मस्ती ला दी। वह भावुक टाइप का युवक हर बात को इतनी मिठास से कहता था कि मैं उसे एकटक निहारने लगती थी। वह स्वच्छंद था, उसकी प्रकृति स्वच्छंद थी, और उसका हृदय स्वच्छंद था।

एक रोज मैं उसके साथ "जाकूहिल्स" पर घूमने गई। वह पहाड़ पर खड़ा खड़ा बन्दरों को चने खिला रहा था। बहुत से बन्दर इकट्ठे

हो गये थे। एक बन्दर ने झपट कर मंगल के हाथ से चनों का ठोंगा छीन लिया। मंगल हत-प्रभ हो गया। मैं खिलखिला कर हँस पड़ी। मेरी हँसी थम नहीं रही थी। आखिर मंगल ने भी खामखा हँसने का प्रयत्न किया। मुझे उसकी हँसी पर और हँसी आ गई तब उसने मेरी मजाक करने की कोशिश की।"

"ज्यादा हँसोगी तो पेट फट जायेगा।" पर वह मजाक, मजाक न बन पड़ा। तब उसने ऐसे अधिकारपूर्ण स्वर में मेरा हाथ पकड़ कर कहा जैसे वह मेरा चिर-परिचित है। "क्यों फालतू हँस रही हो ?" और वह मुझे घसीटता हुआ पहाड़ के एक छोर पर ले गया और कड़कता हुआ बोला। "तुम्हें किसी की हार पर बड़ा आनंद आता है और मुझे तुम्हारी इस हँसी पर...। वाक्य की समाप्ति के पूर्व ही उसकी आँखें मेरे चेहरे पर जम गईं। दो क्षण तक हमारी आँखें टकराती रहीं। एक सिहरन, एक कम्पन मेरी रग-रग से दौड़ गई। एक नशा सा छाया रहा। मैं भोले बच्चे की तरह अपने हाथ को उसके हाथ में दिये उसे टुकुर-टुकुर निहारती रही। उसने धीरे से कहा—"यह हाथ मेरे हाथ में रहेगा।"

"मंगल !"—जैसे किसी ने जख्मी के जख्म पर नमक छिड़क दिया हो, उस प्रकार मैं चीख पड़ी—"मेरा हाथ छोड़ दो।" मैंने अपने हाथ को छुड़ा कर उसे इस प्रकार संभाला जैसे वह साबित है या नहीं। "तुम्हें मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।"

"मैं खुद शर्मिदा हूँ।" भावावेश में मुझे कुछ ख्याल नहीं रहा।" मंगल ने अपराधी की तरह कहा।

"भविष्य में ख्याल रखना, समझे।" और मैं वहाँ से सीधी उठकर आ गई। मैंने एक बार मुड़कर मंगल की ओर देखा, उसका चेहरा शरीफ अपराधी की तरह शर्मिन्दा था।

८

★★★

दूसरे दिन दोपहर को मैं नीरा से गप-शप लड़ा रही थी। गप-शप का विषय था, मालरोड। मैंने कहा कि मालरोड पर साठ वर्ष वाली बुढ़िया भी लिपिस्टिक की शान में बट्टा लगाती नवयौवना की तरह अपनी चाल को बनाती, बुड्ढों को घूरती चलती है।

नीरा ने मेरे गाल पर चुटकी भरते हुए कहा।" और यदि तुम भी बनठन के चलोगी तो युवकों को घूरना नहीं भूलोगी।"

"क्यों, क्या यह जरूरी है ?"

उसने तपाक से कहा—। "मालरोड का असर ही यही है।"

हम दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं।

मैंने कल की मंगल के साथ घटी घटना की जरा भी चर्चा नहीं की। उसे मैंने छिपाने में ही लाभ समझा।

तभी डाकिये ने आवाज लगाई। मैं झपट कर दरवाजे पर गई। चिट्ठी मेरी अपनी ही थी, अपने अशोक की थी।

नीरा को थोड़ी देर के लिए चुप रहने की विनती कर मैंने चिट्ठी को पढ़ना शुरू किया।

"अमृत !"

"मैं चली अमृत !" —नीरा ने बीच में मेरा ध्यान भंग किया।

"क्यों ?"

"एक काम याद आ गया, गुड लूक।"

नीरा चली गई। मैंने खत को पुनः पढ़ना प्रारम्भ कर दिया —

"अमृत !"

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करते करते आशा भी निराश हो चुकी। ऐसा मालूम पड़ता है कि पहाड़ की गोद में बसे प्रकृति के अंचल में तुम्हें जीवन के उस आनन्द की प्राप्ति हो गई है जिसे तुम्हें आवश्यकता थी। अशेष अशेष है, उसकी खुशी भी अशेष है। यह तुम कदापि नहीं भूलेगी।

पर सच तो यह है कि मैं सौन्दर्य का पुजारी हूँ और सौन्दर्य दृष्य है, मैं स्पृश्य बनाना चाहता हूँ और वह तब बन सकता है जब मेरा उस पर सामाजिक तथा कानूनी अधिकार हो। अमृत ! विवाह ही वह अधिकार दिला सकता है, अतः तुम जल्दी लौट आओ, ...लौट आओगी न ......हाँ, अर्चना तुम्हें नमस्ते करती है। आज-कल यही एक ऐसी साथिन है जिसके साथ हँसी-खुसी दिन गुजर जाते हैं।

प्यार भरे पत्र की प्रतीक्षा—

—अशेष

मैंने डाह से अशेष के पत्र को मुट्ठी में मरोड़ते हुए सोचा। 'अर्चना !' मैं एक सौतिया डाह से जल उठी। मेरे रहते हुए अशेष क्यों एक ऐसी गन्दी औरत से अपना सम्पर्क बढ़ रहा है। यह मुझे कतई पसन्द नहीं था। उस पर मैंने अशेष को कह भी दिया था कि ये माडल गर्ल्स बहुत ही खतरनाक होती हैं। नंगी होकर तवीर उतरवाने वाली औरत भला प्रेम करना क्या जाने ? उसका साथ ही बदनामी का दूसरा नाम। ...अबकी मैं जाकर अशेष से इस बात का फैसला करके ही रहूँगी कि वह यदि अर्चना से अपना सम्बन्ध बनाये रखेगा तो मैं अपना रिश्ता उससे सदैव के लिए तोड़ लूंगी। अशेष के लिए मेरी यह धमकी काफी होगी न जाने क्यों अर्चना मुझे फूटी आँख भी नहीं सुहाती थी हालाँकी अशेष उसके और अपने बीच की स्थिति कई बार साफ करदी थी। उसे देखकर मेरे खून में आग सी लग जाती थी सच तो यह है कि मैं अर्चना से ऐसी घृणा करती थी जिस घृणा को हम सब एक दम हेय समझते हैं। मैं चाहती हूँ कि कम से कम यह औरत मेरी आँखों के सामने

न आये । एक भय सा मेरे हृदय में बैठा हुआ था कि यह औरत कभी न कभी हमारे प्रेम में गलतफहमी या ऐसी ही कोई बाधा उत्पन्न कर देगी । जो हमारे सुख मय जीवन में कटुता का समावेश करेगी । इसी लिए मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि इसे मैं अपने रास्ते से एक दम ही हटा दूँगी ।

मैं इसी उधेड़बुन में करवटें बदलती रही । अशेष पर भी मुझे झुँझलाहट आ रही थी कि उसने मेरी बात पर गौर क्यों नहीं किया ? उसे भी मैं जरूर सताऊँगी, यह मैंने मन ही मन निश्चय किया ।

तभी नौकर चाय लिये कमरे में आया । उसके हाथ में लिफाफा था । उसने मुझे थमाते हुए कहा ।" आपकी चिट्ठी ?"

मैंने चिट्ठी पर लिखे हस्ताक्षरों को तुरन्त पहचान लिया ।
'कौन लाया था ?"

"मंगल बाबू !"

"कब ?"

"अभी !"

मैंने तुरन्त खिड़की की राह से देखा, मंगल तेजी के साथ कदम उठाता हुआ लौट रहा था । उस दिन की घटना के बाद वह मुझसे दूर-दूर भागने की निरन्तर चेष्टा कर रहा था ।

"अच्छा, तुम जाओ ।" मैंने नौकर को आज्ञा दी । वह चला गया, मैंने खत को खोलकर पढ़ना शुरू किया ।

अमृत !

उस दिन की स्वप्न सी घटना के कारण और तुम्हारे कठोर रुख के कारण मेरी हिम्मत नहीं हुई कि मैं तुमसे आकर भेंट करता । भूल, यदि तुम इमानदारी से सोचो तो, हम दोनों की थी । वैसे भूल मैं अपनी ही मानता हूँ, क्यों मानता हूँ ? इसलिये कि आधुनिक युग में नारी के मन की उच्छखलता अपराध नहीं कहलाती किन्तु पुरुष की भावुकता अपराध के साथ-साथ पाप भी कहलाती है ।

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि तुम्हारे रूप के सामीप्य कोई भी व्यक्ति अपनी भावनाओं का शोषण कर सकता है ?...शायद तुम शलभ और लौ की प्रीति से परिचित नहीं हो ? फिर सोचो कि मेरे जैसा कोमल हृदयी जीव जिसके साथ तुम गत कई दिनों से उन्मुक्त हवा की तरह बह रही हो, जिसके हृदय की हर धड़कन की आवाज को तुमने सुना है, हाथ में हाथ डाले पर्वत की छाया में प्रेमालाप तो नहीं, परोक्ष रूप वैसे भाव तथा सांकेतिक शब्दों का प्रदर्शन और प्रयोग अवश्य किया है। क्या वैसा आदमी अपनी भावनाओं के उठते हुए बवण्डर को रोक सकता है ? मैं पूछता हूँ कि क्या ये सब नाटक के दृश्य थे ? तुम कहोगी, नहीं और मैं भी कहूँगा नहीं। क्योंकि वे नारी की ओर से की गई हरकतें थीं ।

अमृत ! मैं वकीलों की नीरस तर्क युक्त बातों को समाप्त करता हूँ। इन बातों में निर्णय का अस्तित्व कम रूप में मिलता है । मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे हृदय की हर अवाज को अच्छी तरह समझ लो । तुम यह भी जान लो कि भले मैं उन्हें प्राप्त न कर सकूँ पर अपनी आत्मा से मै तुम्हें सदैव प्यार करता रहूँगा।... मैं तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य का पुजारी नहीं बल्कि उस मुक्त एवँ मृदु आत्मा का प्रेमी हूँ जिसमें मेरी स्मृति का भी दीपक जलने वाला है।

आज शाम को एक बार जाकू हिल्स पर मिलोगी ?

प्रतीक्षा करता रहूँगा ।

मंगल ।

मैंने अशेष और मँगल दोनों के खत एक दूसरे के पास रक्खे और उन पर विचारने लगी ।

"मंगल मूर्ख है।" मैंने दोनों खतों को अपने तकिये के नीचे रख कर अपने आप से कहा और मालरोड पर स्थित बाग में आकर बैठ गई। बाग में घुसने के पहले मुझे दो पैसों का टिकट लेना पड़ा, ऐसा यहाँ का नियम है।

मैं बैठी रही निरुद्देश्य। मुझे महसूस हो रहा था कि जैसे मेरा सारा खून पहाड़ की ठंडी हवा से जम गया है, इसीलिए मैं गंभी ता पूर्वक विचार नहीं सकती। कभी-कभी मुझे सन्देह सा होता था कि मुझ में अब वह शक्ति ही नहीं रही जिसके द्वारा बड़े-बड़े व्यक्ति जटिल से जटिल समस्या को सुलझा लेते हैं। विवश होकर मैं शाम की प्रतीक्षा करने लगी।

शाम होने लगी। मुझे महसूस हुआ कि आज शाम हमेशा की अपेक्षा अधिक उदास है, अधिक सुस्त है।

मै उठी। मेरा मन भारी था। मैं समझ नहीं रही थी कि मैं मंगल को क्या कहूँगी ? परन्तु मैं चली जा रही थी।

चढ़ाव पर चढ़ना आसान नहीं था। अभी मैं दो-सौ कदम ही चली थी कि मेरे पाँवों ने जवाब दे दिये। मेरे अँग-अँग में पीड़ा सी होने लगी। मुझे विश्वास हो गया कि मैं अब अधिक नहीं चल सकूँगी। मैं सुस्ताने के लिये रास्ते के छोर की ओर मुड़ी। छोर के नीचे पचास फुट गहरी खाई थी। मेरे पाँव लड़खड़ा रहे थे। मैंने छोर पर धम से बैठ जाना चाहा पर मेरा पाँव फिसल गया। मैं एक चीख के साथ उस खाई में मुह के बल गिर पड़ी। इसके बाद मैंने अपने आपको अस्पताल में पाया।

९

***

"मुझे जान से मार दो डाक्टर, जान से।" मेरी एक चीख ने हस्पताल के कमरे की दीवारों को हिला दिया।

"पागल मत बनो।" डाक्टर ने धैर्य से कहा।

"डाक्टर ! मैं पागल हो जाऊँगी।" मैंने करुणा से चीखते हुए डाक्टर के पाँव पकड़ लिये। डाक्टर मुझे जान से मार दो, ऐसी दवा दे दो जो मेरी इस कुरूपता को हमेशा के लिये मिटा दे।" और मैंने बिस्तरे के नीचे से शीशा निकाल कर अपने चेहरे को देखा। कश्मीर की सेव की तरह मेरे लाल गाल पीले पड़ गये थे। जिस रूप पर स्वयँ रूप फिदा था उस रूप को प्रकृति ने अपने बर्बर पैरों से रौंद दिया था।... "बाबा ! मैंने गिड़गिड़ा कर जब कई बार डाक्टर से प्रार्थना की, उस पर भी उसने मुझे जान से मारने का आश्वासन नहीं दिया। मैं भी कितनी पगली थी बाबा ? डाक्टर से मरने की भीख माँग रही थी। जो सबको जीवन देता है, भला वह क्या मुझे मौत देगा ? पर व्यथा ने मुझे पागल बना दिया था। मैं कुछ भी सोच-समझ नहीं रही थी। अन्त में विवश होकर मैंने अपना सिर फोड़ना चाहा पर मैं इसमें भी असफल रही। नीरा और पिता जी मुझे ढाढ़स पर ढाढ़स दे रहे थे। मंगल कहीं बाहर गया हुआ था। पर मैंने रोना बन्द नहीं किया।

मैं जानती थी कि नारी की कुरूपता उसका सबसे भयँकर अभिशाप है। लगातार मैं तीन दिन तक पागल की तरह चीखती-तड़पती रही। डाक्टरों को सन्देह हो गया था कि मैं पागल हो जाऊँगी, इस

वास्ते उन्होंने मुझे एकान्त में रहने को कहा। उन्होंने इस बात की खास हिदायत दे दी थी कि इसे अपने चेहरे को देखने का अवसर ही नहीं मिलना चाहिए।

"बाबा!" अमृत की आँखों से आँसू टपक,पड़े।

"तुम अब क्यों रोती हो ?" बाबा ने जोर देकर उससे पूछा।

"इसलिए कि तुम भी अब मुझ से मेरा चेहरा देखने के बाद घृणा करने लगोगे।"

नहीं तो।"

"विश्वास नहीं होता। मेरे इस विकृत रूप को देखकर लोगों ने मेरी इतनी उपेक्षा की जितनी लोग अपनी बाँझ गाय की करते हैं।"

"मैं तुम्हारे विकृत रूप का दर्शन करना चाहता हूँ।"

"बाबा! उसका दर्शन करके तुम्हें दुख ही होगा। तुम्हारी भावनाओं को बड़ी ठेस लगेगी।"

'लगने दो। मेरी अपनी भावनायें हैं, ठेस लगती है तो तुम्हें क्या ?"

अमृत बाबा के बिलकुल समीप आई। उसने उनकी आँखों में आँखें डाल दीं। उसकी आँखें कह रही थीं कि जिद्द मत करो बाबा, तुम्हारी सुन्दर आत्मा को असुन्दर का दर्शन रुचिकर नहीं लगेगा। ...पर बाबा ने खुद-ब-खुद उसके उस पल्ले को धीरे-धीरे हटाना शुरू किया।

जैसे-जैसे पर्दा हटता गया, वैसे-वैसे बाबा की आँखों में करुणा और तड़प पैदा होती गई और जब पर्दा उसके चेहरे पर से बिलकुल हट गया। तो बाबा ने 'ओह, के साथ अपनी आँखें बन्द कर लीं।

अमृत चीख पड़ी—"खोल दो, आँखें खोल दो बाबा, मैं कहती हूँ कि आँखें खोल दो।"

उसने बाबा को झँझोड़ा बाबा ने आँखें खोल दो मैं कहती थी न, कि नारी के रूप की विकृत कितनी पीड़ित होती है ? तुम भी उसे देखोगे तो घृणा से मुँह फेर लोगे। क्योंकि तुम भी तो इसी मिट्टी के

पुतले हो। मै जानती थी कि तुम मुझे औरों की तरह घृणा ही दोगे, और उस घृणा की प्रतिक्रिया मेरे तन-बदन में आग लगा देगी और मै तुमसे उतनी ही घृणा करूंगी जितनी तुम मुझ से करते हो।"

बाबा गम्भीर बना रहा।

अमृत का स्वर पहले की अपेक्षा शान्त हो चुका था। उसके चेहरे की उद्विग्नता कम हो गई थी। उसके शरीर का कम्पन रुक गया था। वह थके हुए इन्सान की तरह कह रही थी—'मैं इस रूप की विकृति को लिए मजबूरन जिन्दा रह रही हूँ। मै एक अपग उपेक्षित प्राणी की तरह जीवित रहने की अभ्यस्त नही थी। पर प्रकृति ने मुझे मरने नही दिया, उसने मेरी जिन्दगी का ठेका सा ले लिया है, ऐसा मै आज तक जान पाई हूँ।"

और बाबा उसके शब्दों पर कम ध्यान देता हुआ उसके चेहरे को देख रहा था। गोरा चेहरा, सुन्दर आँखें, सब कुछ ठीक ठाक पर उसके एक गाल पर ईसाई धर्म वाले जिस प्रकार 'क्रास' किया करते हैं, ठीक वैसा ही गहरा क्रास है। निचला होठ आदमी जैसा है पर ऊपर का होठ बीच में से इस तरह कटकर जुड़ा हुआ कि उसके उठे हुए हिस्से से आधे तीन दाँत साफ देखे जा सकते थे।

अमृत ने बाबा के मन के भावों को पढते हुए कहा—"ये चमकदार दाँत है न, सबके सब बनावटी हैं, देखो।" अमृत ने बनावटी दाँतों को बाहर निकाल कर बाबा को दिखाये। बाबा की आँखों में एक बार फिर करुणा चमक उठी। किसी विचार के वशीभूत होकर बाबा ने एक बार फिर आँखें बन्द कर लीं। उसकी इस हरकत पर अमृत चोट खाये साँप की तरह फुफकार उठी।" फिर तुमने आँखें बन्द कर लीं, खोल दो आँखें।"

अमृत ने रोते रोते कहा—"मुझे जिन्दगी भर किसी ने प्रेम पूर्वक सीने से नहीं लगाया। बाबा! नारी के रूप की विकृति कितनी पीड़ा-जनक होती है, यह मुझ से पूछो। यह होंठ फट जाने पर, ये दाँत टूट

जाने पर क्या मेरे हृदय की नारी मर गयी है ?...बाबा ! मेरे अन्तर की नारी को समझने की किसी ने चेष्ट नहीं की। किसी ने मुझे सीने से लगाया तो अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए ।...सब मुझ से नफरत करते हैं, इतनी नफरत कि मैं अपने आपको एक बोझ समझने लगी और... ।" वह रो पड़ी। बाबा ने लपक कर उसे अपने सीने से लगा लिया। "रोओ मत अमृत, मैं तुम्हें कभी दुख नहीं दूंगा, तुम से कभी भी घृणा नहीं करूँगा।... जब तक जिन्दा रहूँगा तुम्हें हार्दिक प्यार करूँगा।...रूप की विकृति का महत्व मेरे सामने जरा भी नहीं है। मैं मनुष्य की उस भावना को प्यार करता हूँ जो निश्छल है, जो सत्य है, जो प्रकाशमान है।"

अमृत की आँखों से आँसू बह रहे थे।

बाबा उसके सिर को अपने मुलायम हाथों से सहला रहा था। और वह मर्मान्तिक पीड़ा से बोझिल होकर भी अपनी कहानी सुनाती गई।

१०

***

बाबा ने अपने आँसुओं को पोंछते हुये कहा—"मेरी बच्ची, मैंने तुम्हारे जीवन की सारी मुख्य-मुख्य घटनायें सुन ली है अब अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम जाओ और अपने बच्चे को, इस नये इन्सान को, सीने से चिपका कर अपनी सारी ममता इस पर उड़ेल दो।...यह एक महान् मानव की अभिलाषा है। इसे जीवित रखना तुम्हारा परम कर्त्तव्य और ध्येय होना चाहिए।...इसकी मृत्यु केवल इस बच्चे की मृत्यु नहीं, बल्कि उन तमाम बच्चों की मृत्यु है जो बेचारे मजबूर और असहाय हैं। यह मृत्यु इस नये युग की मृत्यु है, इस नये इन्सान की मृत्यु है

जो अपने साथ नये विचार, नई भावना तथा नई व्यवस्था लेकर पैदा हुआ है।...इसे जीवित रखने का भरपूर प्रयास करो, प्रगतिशील शक्तियाँ तथा विचार तुम्हें सहायता प्रदान करेंगे।

अमृत ने देखा कि बाबा के चेहरे पर एक अलौकिक ज्योति चमकने लगी है। उनके चेहरे पर अपार शान्ति विराज रही है और वे एकदम सहिष्णु मालूम पड़ने लगे हैं।

जब बाबा ने अमृत के सिर को दुबारा सहलाया तो उसे जान पड़ा कि बाबा के हृदय में सारे मानवी-स्नेह विद्यमान हैं। क्या माँ, क्या बहन, क्या पति और क्या भगवान ? उसने बाबा की नंगी बालोंदार छाती से अपना गाल सटा लिया।

बाबा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुये धैर्य से कहा— नारी रूप की विकृति अभिशाप अवश्य है मेरी बच्ची, पर विकृति और उपेक्षा से घबरा कर जीवन को खत्म कर देना, इन्सानियत नहीं। जो भावना इन्सानियत के खिलाफ है, उसे अपने मन में पनपने मत दो।...क्या सुरूप और रूप-विकृता के संसार नये अलग बसते हैं ?...नहीं, फिर इस संसार में जीने के तरीके सीखो, मरने के नहीं।

अमृत काफी देर तक बाबा की नगी छाती पर अपना सिर रखे रही। बाबा ने उसे अपने से विलग करते हुए कहा—"जाओ बच्चे को दूध दे दो, दूध का समय हो गया है।...और हाँ, अब तुम जरा भी बीती बातों पर दुख न करोगी। अपने आप से प्यार करोगी। ...जाओ मेरी अच्छी लड़की जाओ।"

उसी रात बाबा अपने अध्ययन कक्ष में पहर रात तक विचारता रहा। उसकी भाव-भंगिमा से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि वह किसी गम्भीर-विषय पर विचार-विमर्श कर रहा है। उसके हृदय में कोई आन्दोलन मचा हुआ है।

पहर रात बीत जाने पर बाबा की कलम चली।

"अमृत के रूप की विकृति ने उसके जीवन में नये परिवर्तन ला

दिये। वह कई दिन तक विक्षुब्ध और विक्षिप्त रही। न किसी से मिलती थी और न किसी से कुछ कहती थी। केवल अपने कमरे में घुटी घुटी सी रहती है। उसकी दशा उस व्यक्ति की थी जो किसी कारण जेल में पकड़ा गया है और दैवयोग से उसके परिचित वहाँ आ टपके हैं जिनसे वह मुँह छुपाने का भरपूर प्रयत्न कर रहा है।

उसका पिता उसे लाख समझाने की चेष्टा करता कि जो हो गया वह तो हो ही गया, अब उसके लिये व्यर्थ ही परेशान होना कहाँ की बुद्धिमानी है। वह उसे भाँति-भाँति के धैर्य देता पर उसके दिमाग में एक बात जम गई थी कि अब उसे औरों से घृणा के सिवाय कुछ नहीं मिल सकता।

दिन बीतते गये। एक दिन अशेष का पत्र आया। उसमें लिखा था।

कम्बख्त अमृत !

आखिर तुमने जो ठाना वह कर ही दिखाया। आज पिता जी अकेले ही सकुशल यहाँ पहुँच गये हैं। उन्होंने तुम्हारी कुशलता के साथ यह भी नम्र-निवेदन किया है कि तुम दो माह बाद लौटोगी।... और मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि तुम मर क्यों नहीं जाती ?

तुम जिंदा हो तो कैसे और क्यों ? क्या यमराज की तुम पर कृपा दृष्टि नहीं है या चित्रगुप्त महाराज की बही में तुम्हारा नाम उस नमावली में नहीं चढ़ा है, जिस पर एक-दो दिन में मौत का वारण्ट निकलने वाला है।

मैं तुम्हारी याद में सूख कर काँटा हुआ जा रहा हूँ और तुम वहाँ पहाड़ी हवा को खाती-खाती मोटी भैंस बनती जा रही होगी। श्रीमती जी···क्षमा करना, भावी श्रीमती जी, अधिक मोटाई सेठानियों की शोभा है, तुम जैसी परी का नहीं। जरा इस नाचीज पर कृपा-दृष्टि रखती हुई शीघ्र पधारने की चेष्टा करना अन्यथा भगवान के पास शीघ्र ही एक्सप्रेस तार देकर शैतान की बच्ची को यमलोक पहुँचा दिया जायेगा।

पत्र की नहीं, तुम्हारी प्रतीक्षा में।

अशेष

अमृत ने अशेष के इस पत्र को कई बार पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते उसके नैनों में आँसू छलक आये। उसे इस पत्र के एक-एक शब्द में अपरिमित प्यार की प्रतीति हुई। उसने रोते-रोते उसके पत्र के एक-एक शब्द को चूम लिया। संवेदना के कारण उसके आँसू थम नहीं पा रहे थे। वह रोते-रोते अन्त में निढाल हो गई।

कुछ काल के पश्चात् वह स्वस्थ हुई। उसने अपने आप विचारा "मुझे अशेष को धोखें में नही रखना चाहिये। उसे सत्य घटना से परिचित करा के स्थिति को साफ कर देनी चाहिये। ऐसा करने से उसे दुख नहीं होगा। वह मुझे छलनामयी नहीं समझेगा और भविष्य में कटुता पैदा नहीं होगी। इस तरह वह अपने विचारों को दृढ़ करके उसे पत्र लिखने लगी।

उसने लिखा—

"मेरे अशेष !"

उसका रोम-रोम काँप उठा। कलम जहाँ थी, वही रुक गई। कौन सी आन्तरिक प्रेरणा ने उसकी चिट्ठी में क्या लिखा, वह खुद समझ नहीं सकी। पर उसने इतना अवश्य अनुभव किया कि वह कुछ लिख अवश्य रही है और थोड़ी देर बाद उसने अपने लिखे को पढ़ा तो वह आश्चर्य चकित रह गई।

उस चिट्ठी में बस इतना ही लिखा—

"मै आऊँगी, मेरे अशेष मैं जल्द ही आऊँगी, तुम प्रतीक्षा करना।...

अमृत।

अमृत ! एक बार फिर रो उठी। उसने लिफाफा बन्द किया, तो भी उसके आँसू न थमे। उसने नौकर को चिट्ठी छोड़ने के लिये बुलाया तो भी उसके आँसू तब रुके जब वह सो गई। निद्रा में भी उसकी सिसकियाँ नहीं थम रही थीं।

चार बज गये।

नीरा ने अमृत के कमरे में प्रवेश किया। आज वह बड़ी खुश नजर

आ रही थीं। उसकी पोशाक नीली थी। क्या साड़ी, क्या ब्लाउज क्या सेन्डिल और क्या बेग ? सबके सब नीले जैसे आसमान।

वह भरसक इस बात के प्रयास में थी कि अमृत अपने रूप की विकृति को भूल कर इन्सान की तरह जीवन बिताये। वह आशावादी औरत थी। उसे उदास औरतों से चिढ़ सी थी।...कोई और होती तो वह उसे झाड़ देती पर वह अच्छी तरह जानती थी कि अमृत में बँगाल की औरतों की भावुकता पूर्णरूप से विद्यमान है। वह शरत के देश की घुटन-प्रिय नारी है। पीड़ा में पलना और तरसना उसने अच्छी तरह सीखा है। उसे जरा सी बात से बड़ी ठेस पहुँचती है अतः वह अमृत से हमेशा समझौने के स्वर में बातचीत किया करती थी।

उसने सोई हुई अमृत को जगाया। अमृत डर के चौंक उठी।

"कौन ?"

"मैं।"

"नीरा !"

"हाँ, नींद लेते लेते तुम्हारा पेट भरा या नहीं ?" उसके स्वर में मजाक था। अमृत ने 'इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने हमेशा की तरह नीरा की ओर उदास निगाहों से देखा जैसे उसकी उदास निगाहें कह रही हैं कि अब जीवन मे सोने और रोने के सिवाय क्या रखा है।

"उठ और जल्दी से कपड़े बदल।" नीरा ने अमृत का हाथ पकड़ कर बिठाया।" इस प्रकार जिन्दगी नहीं गुजारी जायेगी।"

"पर मैं कपड़े बदल कर जाऊँगी कहाँ ?

"मेरे साथ, प्रोग्राम देखने। यहाँ बंगालियों का एक स्टेज है वहां बगाली-समदाय की ओर से वैरयटी-प्रोग्राम पेश किया जायेगा।"

"मैं नहीं चलूंगी।" पुनः सोते हुए अमृत बोली।

"तुम्हें चलना ही पड़ेगा।" नीरा ने दृढ़ता से कहा।

'क्यों ?"

"मेरी जिद्द है।"

"तुम्हारी जिद्द पूरी नहीं होगी। मुझे बाहर जाते शर्म आती है।"

"शर्म किस बात की ?"

"अपनी इस बदसूरती की, अपने रूप की विकृति की।"

आज नीरा अमृत के इस कथन पर झल्ला गई। अपने नथुनों को फुलाती हुई बोली—"तुम मुझे बता सकती हो कि दुनियाँ में ऐसी कितनी युवतियाँ हैं जिन्हें तुम मेरी श्रेणी में रख सकती हो ?······ शायद बहुत कम। इसका मतलब यह तो नहीं हुआ कि वे तमाम अपने महान् जीवन को घर की चाहर दीवारी में खत्म कर देगीं।···अमृत ! तुम्हारी इस रूप की विकृति के प्रति वे ही आदमी की घृणा प्रकट करेंगे, जो तुम्हें पहले-पहल बहुत चाहते थे, जो तुम पर सामाजिक अधिकार प्राप्त कर के शारीरिक-सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। लेकिन दूसरे आदमी तुम्हारे जीवन की दर्दनाक दुर्घटना के प्रति सदैव सहृदयी बने रहेंगे, सदा सहानुभूति ही प्रकट करते रहेंगे।"

"नीरा !—अमृत ने लपक कर नीरा को अपनी छाती से लगा लिया—तुम मुझे कितना बल देती हो ? शायद तुम्हारा आत्म-विश्वास मेरे विचारों को बदल दे, मेरे हीन-भावों को जड़ से खोद दे, मुझ में वह साहस भर दे जो किसी की उपेक्षा को स्वीकार ही न करें।"

"तब चलो मेरे साथ,···तुम साथ रहोगी तो बड़ा मजा आयेगा। ···मंगल भी आयेगा।"

"मँगल !"

"हाँ मंगल भी, उसके लौट आने के बाद तुमने उससे एक बात भी नहीं की, इसका उसे बहुत दुःख है।"

"मुझे शर्म आ···।"

"फिर वही बात !"—नीरा के स्वर में ताड़ना थी।

"अच्छा, चलती हूँ—" अमृत ने ऐसा अभिनय किया जैसे नीरा उसे पीट रही है और वह अपना बचाव कर रही है।

अमृत उठी। उसके चेहरे पर हँसी थी। ऐसी हँसी जिसमें भावी—जीवन का आनन्द निहित था।

उसने भी नीरा की भाँति कसे हुए वस्त्र पहने। उन कसे हुए वस्त्रों में पीछे से वह बहुत ही आकर्षक जान पड़ती थी। साड़ी को इतनी सावधानी से पहना गया था कि उसके अंग-प्रत्यंग साफ मालूम पड़ रहे थे।

'क्यों, कैसी लग रही हूँ ?" अचानक पूछा अमृत ने।

"अच्छी—और नीरा ने अपने मन से कहा—"काश ! ईश्वर तुम्हें यह दंड नहीं देता।" फिर भी उसने बुजुर्ग की तरह अमृत के उस गाल पर थपकी दी जिस पर क्रास बना हुआ था, जिसका घाव पूरी तरह से भरा भी नहीं गया था।

दोनों वस्त्रों को बार-बार सँभालती हुई मालरोड के दक्षिण की ओर जा रही थीं।

जब वे नाटक-गृह में पहुँची तो दर्शकों की आँखे उन दोनों पर लग गईं। विशेष कर वे संदिग्ध दृष्टि से अमृत को देख रहे थे। अमृत लजा गई। "ये लोग मुझे नाटक की अभिनेत्री की तरह घूर-घूर कर क्यों देख रहे हैं ?" उसने मन ही मन कहा।

लोगों की निगाहें और पैनी होकर उस पर लग गईं। उसने कुर्सी पर बैठते हुए मन ही मन कहा—"ये लोग मुझे भूखे बाज की तरह क्यों देख रहे हैं।" उसने भी यंत्रवत अपनी दृष्टि उन तमाम व्यक्तियों पर फेंकी जो उसे करुणा, दया और घृणा की भावना से देख रहे थे।

प्रोग्राम प्रारंभ होने की पहली घंटी बज चुकी थी।

कुछ लोगों का ध्यान अब पर्दे की ओर चला गया था।

कुछ आपस में कानाफूसी कर रहे थे। शेष अमृत को उसी गिद्ध-दृष्टि से देख रहे थे जैसे वे अमृत के चेहरे पर किसी अदृश्य भाव को ढूंढ रहे हैं।

अमत के पीछे सीटों पर दो युवतियाँ बैठी थीं। वे परस्पर वार्तालाप कर रही थीं। एक ने कहा—"यह औरत जो हमारे आगे बैठी है,

बड़ी डरावनी सूरत वाली है। रात को यकायक कोई बच्चा इसे देख ले तो बेहोश हो जाय।"

"बच्चे की बात छोड़, मैं भी देख लूँ तो साँस गले में अटक जाय।" दूसरी ने कहा। अमृत ने सुना। उसने एक बार तमाम दर्शकों पर अपनी दृष्टि डाली।

"मुझे सारे के सारे व्यक्ति क्यों घूर रहे हैं ?" उसने अपने आप से कहा—"क्या वे मेरे चेहरे की भयानकता से भयभीत हैं।"

तभी एक युवती जोर का अट्टहास कर उठी।

"यह भी मुझ पर हँस रही है, बत्तीस दाँत निकाल रही है, वह क्यों निकाल रही है ? उसे क्या अधिकार है कि वह दूसरों की खिल्ली उड़ाये ?…मैं।"—अमृत की आँखें क्रोध के कारण लाल हो गई। नीरा की दृष्टि तीसरी घंटी के साथ स्टेज पर लग गई।

"थू…।" पास वाले लड़के ने थूका।

"यह मुझे बिलकुल गन्दी और भद्दी समझ कर थूक रहा है।" उसका अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता ही जा रहा था। वह ऐसा क्यों समझ रहा है। समझी, उसे भी मेरे चेहरे से घृणा है, घृणा।" अमृत की मुट्ठियाँ बन्द सी हो गई। उसने मन ही मन कहा—"लानत है मुझे।"

"मैं चली नीरा।" और अमृत नीरा के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही हाउस के बाहर हो गई। नीरा उसे देखती ही रह गई। रंग-मंच पर भारती राय का कत्थकली नृत्य प्रारम्भ हो चुका था। यह भारती राय नीरा की मित्र थी। इसका विशेष अनुरोध था कि वह उसका नृत्य अवश्य देखे। यही कारण था कि उसने अमृत का पीछा नहीं किया।

अमृत तूफान की तरह भाग रही थी।

'अमृत !…अमृत!! रुको अमृत !!!" यह मंगल की अनुरोध भरी पुकार थी, किन्तु अमृत के कदम पूर्ववत् उठते ही जा रहे थे। मंगल ने झपट कर पीछे से उसका आँचल पकड़ लिया और उसके सामने आया—

"तुम रो रही हो अमृत ?"

अमृत जोर से फफक पड़ी।

"क्यों रो रही हो अमृत ?"—मंगल के स्वर में गहरी आत्मीयता थी, "लो अपने आँसू पोंछ लो।" उसने उसे रूमाल दिया।

सड़क पर वे दोनों चुपचाप जा रहे थे।

"तुम्हें पश्चाताप में अपने आप को नहीं जलाना चाहिए।···प्रकृति का प्रकोप तो वरदान होता है। उस वरदान को बोझ नहीं, एक कर्त्तव्य समझ कर ढोना चाहिए।···रूप की विकृति आत्मा की विकृति नहीं कहलाती। तुम्हारी आत्मा अब पहले से भी अधिक सुन्दर हो गई है क्योंकि उसमें तुम्हारा बाह्य सौंदर्य-जनित अहम् लेशमात्र भी नहीं है। सौन्दर्य वह है जो अत्यधिक सुख दे और वही वस्तु हमें सब से अधिक सुख दे सकती है जिसे हम सब दृष्टिकोण से प्यार करते हैं। इसलिए मेरी तुम से प्रार्थना है कि तुम अपनी पीड़ित प्रवृति को प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस विकृति को अपनाने के लिए प्रेरित करो।" मँगल अब उसका हाथ पकड़ कर निवेदन कर रहा था। "तुम हद से ज्यादा क्लान्त हो, एकान्त में रहोगी तो तुम्हारा दुःख और बढ़ेगा, आओ जरा हम चाय-वाय पी लें।"

अमृत ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह मंगल के पीछे-पीछे चली। आज अमृत को अपना आँचल और हाथ पकड़ा जाना न जाने किस प्रेरणा से बुरा नहीं लग रहा था।

चाय की चुस्की लेते हुए मगल ने पूछा—"आप रो क्यों रही थीं अमृत ?"

"हर आदमी मुझसे हार्दिक घृणा करता है, ऐसा क्यों ?"

"मैं नहीं मानता। तुम्हें वहम हो गया है, अमृत !······अब तुम वापस कलकत्ते चली जाओ, यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति तुम्हारी यह धारणा बन गई है कि वह तुमसे नफरत करता है।···शायद तुम मुझे भी ऐसा ही समझती हो ?"

"नहीं।" प्रकट रूप से अमृत ने यह कह दिया पर मन में वह कुछ और ही सोचने लगी। यह मंगल भी अब मुझे अपनी आँखों से दूर रखना चाहता है और क्यों न रखे, ऐसी भद्दी सूरत वाली को कौन चाह सकता है ?

इस संक्षिप्त उत्तर और बाद की चुप्पी जनित भावों को ताड़ते मंगल को देर न लगी। कह ही बैठा—

"पर मैं तुम्हें अब भी हृदय से चाहता हूँ।"

"सच।"

"हाँ !"

"तो मेरे साथ जाकू हिल्स चलो। मैं एकान्त में बहुत सी बातें करना चाहती हूँ।"

मँगल को जाना था प्रोग्राम में, पर अमृत के दुःख का ख्याल कर के वह उसके साथ हो लिया।

अब वे चढ़ाई चढ़ रहे थे। अमृत उसे बार-बार तिरछी निगाहों से देखती थी पर मँगल किसी भावना में ही डूबा चला जा रहा था --नत-मस्तक।

"मंगल !" एक उश्रृंखल से लड़के ने मंगल को पुकारा। यह नया लड़का बड़ा उद्दंड मालूम पड़ रहा था। उसकी आवाज जरूरत से अधिक भारी थी।

"कहो चौधरी, आज यहाँ कहाँ से टपक पड़े ?" मंगल ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा।

"मेरी कुछ सूंघने की शक्ति बड़ी तेज है, जहाँ...।" चौधरी का स्वर कुछ धामा पड़ गया। उसने बात को बीच में छोड़ कर मंगल को अमृत से दूर किया और ऐसे स्वर में बोला कि उसकी भनक अमृत के कानों में अच्छी तरह पड़ जाय..."जहाँ छोकरी हो, वहाँ हम विलायती कुत्ते की तरह पहुँच ही जाते हैं पर यार तुमने इस बदसूरत को अपने साथ क्यों लिया है ?"

मंगल ने हाथ का संकेत किया, "चुप।"

"इस हरकत को अमृत ने देखा। उसे तुरन्त गुस्सा आ गया—
"मंगल मेरी खिल्ली उड़वाने के लिये मुझे यहाँ लाया है।"

"यह तो डायन की तरह लगती है।"

"डायन।"—अमृत की आँखों में शोले से जल उठे।

"चुप रह न चौधरी ?"—मंगल का स्वर तेज हो गया।

"जो आज्ञा गुरूदेव की, अपन की तो नजर भी ऐसी सूरत वाली पर नहीं टिकती ?" और उसने अपने आप अमृत के गाल पर बने क्रास की तरह क्रास किया और हँस पड़ा।

अमृत जल-भुन उठी। तुरन्त ही मंगल से बिना कुछ बोले घर लौट आई। रास्ते में वह दो क्षण के लिये एक दवाई विक्रेता की दूकान पर जरूर रुकी थी। उसके हाथ में एक शीशी थी जिसमें आरसैनिक था। वह पहले-पहल अपने बिस्तरे पर पड़ कर खूब रोई। रोते-रोते उसने एक बार अपने चेहरे को देखा। उसे लगा कि जिन्दगी में ऐसे चेहरे वाली से कोई भी शादी नहीं कर सकता, कोई भी प्यार नहीं कर सकता,...नहीं कर सकता।

दुःख की पराकाष्ठा पर वह अपने विवेक को खो बैठी—'उपेक्षित-जीवन यापन करने से मर जाना ही बेहतर है।" और उसने शीशी का मुँह खोल आरसैनिक उड़ेल लिया।

उसे खाये दो मिनट भी नहीं बीते थे कि नीरा ने कमरे में प्रवेश किया। प्रोग्राम खत्म होते ही वह अमृत के सामने यह सफाई देने के लिये आई थी कि वह तुम्हारे साथ क्यों नहीं आ सकी ?

वह कहना चाहती कि भारतीराय उसकी खास मित्र है, इसलिये वह उठ कर बीच में ही न आ सकी।

पर यहाँ रंग ही कुछ और था। उसने वहाँ पड़ी शीशी को देखा तो उसके पाँव जमीन से चिपक गये। दौड़ी-दौड़ी घर के स्वामी धर्मपाल जी को उसने सूचना दी। वे आये और तुरन्त उसे अस्पताल ले गये।

११

***

इन घटना के दूसरे ही दिन बाबू धर्मपाल ने अमृत के पिता को एक पत्र लिखा।

मेरे प्यारे भाई,

P. K. SAH Raj

प्रणाम् !

आज शाम को तुम्हारी अपनी अमानत 'अमृत' वापस लौटा रहा हूँ ताकि मैं तुम्हारा कोप-भाजन न बनूं। उस दुर्घटना के बाद से तुम्हारी बेटी की मानसिक स्थिति दिन-प्रतिदिन उद्विग्न एवं उत्तेजित होती जा रही है। यह सत्य है कि वह इतनी खूबसूरत थी जितनी चाँद, पर अब वह इतनी बदसूरत हो गई है जितनी जापान के हिरोशिमा की एटम- बम द्वारा विकृत-घायल कोई जापानी युवती। हम दोनों के सामने यह भी मजबूरी है कि हम अभी इसके चेहरे की कुरुपता को प्लास्टिक सर्जरी द्वारा नहीं मिटा सकेंगे।

इन सब बातों को देखकर मैं अमृत को अपने विश्वास-पात्र व्यक्ति के साथ कलकत्ते भेज रहा हूँ। भेज इसलिए रहा हूँ कि आज से दस दिन पहले अमृत ने जहर खा लिया था। ऐसी स्थिति में मैं उसे अपने पास रखने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता हूँ।

हाँ, जहर खाने के बाद मैंने अमृत में एक नया परिवर्तन देखा है। आजकल वह कुछ शान्त है, खुश है, दिलचस्प है। किन्तु अकेली ही। उसे अपने परिचितों से भय सा लगता है। वह उनसे दूर बहुत दूर भागना चाहती है ठीक उसी जंगल के हिरनों की तरह जो शेर की दहाड़ सुन कर भागते हैं।

मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम्हारी इकलौती बेटी की

रक्षा करे। उसे हिम्मत बँधायें। भाभी को प्रणाम्।

पत्र की प्रतीक्षा में। तुम्हारा ही

धर्मपाल

१२

***

धर्मपाल का पत्र मिलते ही अमृत की माँ साधना चिन्तित हो उठी। वह अपने पति को भला बुरा कहने लगी। उसका दोषारोपण यह था कि उनके कारण ही उसकी फूल सी बच्ची की यह हालत हुई। न वह शिमले ले जाते न उसकी यह दशा होती।

उसने कड़क कर कहा—"मेरी बेटी मर जाती तो मैं कहाँ हाथ डालती ?...लाख बार हाथ जोड़-जोड़ कर कहा कि मेरी लड़की को यहाँ बुलवा दो पर मेरी कौन सुने ? शिमला में रहेगी तो जी बहल जायेगा...मैं पूछती हूँ कि क्या कलकत्ता वीरान है।

'अब खामखा क्यों चिल्ला रही हो, अब तो तुम्हारी लाडली आ रही है ?"

'आ रही तो मेरे भाग्य से। आपके लिए तो वह मरी के समान है।"

"जान खाओगी क्या ?"—अमृत के पिता जी का स्वर कुछ कठोर हो गया—"बक्-बक् करके सारा दिमाग तो चाट खाया।... अब बोलेगी तो ठीक नहीं रहेगा, बस मुँह के टाँके लगा कर बैठ जाओ, मूर्ख कहीं की"

"मैं मूर्ख ! तो आप कहाँ के ब्रह्मज्ञानी आ गये।"

'अमृत की माँ हमेशा-हमेशा मुँह लगना ठीक नहीं है। कहीं मेरा खून गर्म हो गया तो बहुत बुरा हो जायेगा।"

"बुरा क्या हो जायेगा ?"

"तू चुप रहेगी या मैं...।"

इस पर साधना चुप हो गई।

गाड़ी के आने का समय हो गया था। उसके पिता स्टेशन को चले।

अमृत ने जैसे ही अपने घर में प्रवेश किया वैसे ही उसकी माँ ने लपक कर उसे अपनी छाती से लगा लिया—"तुम अच्छी तो हो मेरी बेटी।"

मुँह के उस भाग को ढँके ही उसने उत्तर दिया "हाँ माँ।" तब तक उसके अड़ौसी-पड़ौसी इकट्ठा हो गये थे। सब ने एक ही स्वर से पूछा—"कहाँ से गिर पड़ी थी ? कहाँ से गिर पड़ी थी ?? कहाँ से गिर पड़ी थी ???...तुम्हें चोट तो नहीं आई ?"

अमृत ने उस समय उन युवतियों को देखा जिनकी आँखों में उसके प्रति अपार हमदर्दी थी। जो इस बात को सुनने के लिए उत्सुक थीं कि इस दुर्घटना का क्या फल निकला है ?

अमृत मन ही मन कराह उठी कि यह आँखें जो अभी उसे प्यार से देखती हैं थोड़ी देर बाद घृणा से अपने पर पर्दा डाल लेगीं। पर इसे छिपाने से क्या फायदा होगा ?···यह हमेशा के लिए तो छिपी नहीं रह सकती ? और उसने पहले अपनी भावना को दृढ़ किया। फिर डरते-सहमते उसने अपना घूंघट हटा दिया।

उपस्थिति की आँखों में ठीक वैसा ही भय उत्पन्न हो गया जैसा कि अचानक किसी प्राणी को ऊँचे से गिरते देख कर होता है। एक हल्की सी चीख सब के मुँह से निकली।

'सतगुरु ?" एक पंजाबी बुढ़िया ने कहा और धीरे-धीरे तमाम उपस्थिति वहाँ से चल पड़ी। उन सब में एक हलचल मची हुई थी।

अमृत की आँखों में भी वेदना जाग उठी पर वह इतनी दुःखी नहीं हुई जितनी पहले होती थी। जहर खाने के बाद जो नई प्रतिक्रिया हुई थी, वह उसके हक में अच्छी ही हुई थी। वह शौचादि से निवृत होने के लिए गुसलखाने की ओर चली गई।

कलकत्ते के हरिसन रोड पर स्थित अमृत का मकान था, जिसमें कई परिवार रहते थे। विशेष कर पंजाबी ही थे और कुछ मारवाड़ी भी। मकान का मालिक एक मारवाडी सेठ था। उसका लड़का रामप्रसाद कई बार अमृत पर आवारा लड़कों की तरह भद्दे व्यंग्य कस चुका था। जब उसे अमृत के आने की खबर लगी तो वह उसका प्रतीक्षा करने लगा।

अमृत के विचार इन सेठों के प्रति बहुत कटु थे। वह अक्सर सोचा करती थी कि यदि यह सेठ-कौम जरा भी उदारता तथा बुद्धिमानी से काम ले तो वह देश का काफी हित कर सकती है।...लेकिन यह सेठ कौम इतनी व्यक्तिवादी बन गई है कि इन्हें दूसरों के हित का कोई ध्यान ही नहीं रहा। वह एक घटना को कभी भी नहीं भूल सकती थी। आज भी उसकी आँखों के सामने चित्र की तरह घूमती रहती है।

उसे याद आया कि इसी 'बड़ा बाजार' में एक सेठ ने एक किरायेदार को उस समय अपने घर से निकाला जब उसका बच्चा 'टायफायड' से पीड़ित था, जब उसकी बीवी की एक टाँग ट्राम से कट चुकी थी। उस किरायेदार ने चार दिन तक भूख-हड़ताल भी की। इस बीच उसका बच्चा भी मर गया। पर सेठ के हृदय में जरा भी दया पैदा नहीं हुई। हृदय-परिवर्तन पर उसका विश्वास जाता रहा। ऐसी मार्मिक घटनायें भी जब किसी के हृदय पर गहरा असर नहीं कर सकतीं तो उस मनुष्य को जनसाधारण से अलग कर एक नई मनुष्य कौम में रख देना चाहिए।

"मैं इन सेठों को एक नई कौम में रखना चाहती हूँ, उस कौम का नाम भी रहेगा—"सेठ कौम।" पहली बार अमृत के मन में इन सेठों के प्रति हार्दिक घृणा पैदा हुई।

उसी घटित घटना की पहली रात को ही उसने घंटों चिन्तन-मनन कर एक राय कायम की थी—"भारत भूमि पर एक नई कौम अपने पूर्ण उन्नति पर पहुँच गई। यह नई कौम पत्थर से अधिक कठोर और मशीनों से अधिक काम करने वालीहै, चाहे वह काम शारीरिक हो या

मानसिक। इस नई कौम का नाम सेठ कौम है।

इस-कौम का हर जानवर सड़कों पर नहीं, अपितु ऊँची ऊँची अट्टालिकाओं या बँगलों में रहता है, जहाँ वह जन-जन को अपने हिंस्र जबड़ों के बीच दबोच कर उनका खून चूसा करता है।

इसके सिद्धान्त बड़े विचित्र और विवेक पूर्ण हैं जैसे वक्त पड़ने पर 'गधे को भी बाप बना लेना चाहिए' 'दुधारू गाय की भी लात खानी चाहिए' 'चमड़ी चली जाय पर दमड़ी नहीं जानी चाहिए' पर सत्य तो यह है कि इसकी चमड़ी और दमड़ी एक साथ फैलाव करती है।

यह कौम वैसे तो मानवता विरोधी है। पर जहाँ तक धर्मपरायणता का सवाल है, वहाँ इस कौम का प्रत्येक सदस्य अपने आप को उसका कट्टर भक्त बतलाता है। यह तो समय के अभाव की बात है वर्ना इस कौम का हर सदस्य हर धार्मिक आन्दोलन में कट-मरने को तैयार रहता है। वैसे ये नहीं, तो इनके दमड़ी-चाकर तो उन धार्मिक आन्दोलनों में अपनी नौकरी पक्की करने जाते ही हैं।

भले ही ये अपने मकानों के किरायेदारों को सौ-पचास रुपयों के लिए फुटपाथ पर निकाल दें, पर जितनी भी धर्मशालायें या आराम गृह हैं वे इन्हीं के द्वारा ही तो बनाये गये हैं। ये किरायेदार भी कितने मूर्ख हैं कि इनकी धर्मशालाओं में जाकर नहीं रहते ?

ये बहुत अच्छे परीक्षक हैं। तभी तो अपने मजदूरों की शक्ति की परीक्षा के लिए वे उन से उतना ही काम लेना चाहते हैं जितनी कि मशीन ! क्या आप इसे इनकी विशेष बुद्धि नहीं कहेंगे ?

ये रंगमंच पर अपने-आपका परिचय एक 'आदमी' की हैसियत से ही देते हैं। पर अक्सर ये अपने भाइयों को अभिमान से यह कहते हुए नजर आयेंगे—हम तो गिरगिट हैं भाई, समय के साथ रँग बदलना चाहिये, क्या अँग्रेज और क्या काँग्रेस—अपने तो सब माई-बाप हैं।"

अमून का अन्तिम विचार इस कौम के प्रति यह है—"यह नई कौम अबाध गति से अपनी उन्नति के उस चरम शिखर पर पहुँच गई है जिस

शिखर पर हर आदमी को पहुँच कर अपना पतन देखना पड़ता है।...
और यह भी देखेगी क्योंकि झोपड़ियों का तूफान तेजी के साथ बढ़
रहा है।

उस दिन के बाद अमृत के मन में रामप्रसाद के प्रति एक ऐसी घृणा पैदा हुई जिसका अन्त श्वास के साथ सम्बन्ध रखता था।"

अमृत ने गुसलखाने से निकल कर कपड़े पहने और माँ के सामने थाली रख कर वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगी कि माँ खाना परोसे और वह खाना शुरू करे।

उसका बाप जो कि एक विदेशी घड़ी विक्रेता की दूकान पर नौकरी करता था, खाना खाकर चला गया था।

माँ ने खाना परोसते हुए कहा—"बेटी इन चोटों का इलाज नहीं हो सकता ?'

"हो सकता है माँ ! पर उसके लिए काफी रुपयों की जरूरत है। इसलिए हम इसका इलाज करवाने में सर्वथा असमर्थ हैं।" अमृत ने रोटी और साग का कौर अपने मुँह में रख लिया था।

साधना ने एक पल अपनी रूपवती बेटी के कुरूप चेहरे को देखा और नीची गर्दन करके किसी गहरे विचार में तल्लीन हो गई। उसकी आँखों में व्यथा शीशे के छिलके की तरह चमक रही थी।

अचानक उसने पूछा—"अमृत ! अब तेरा विवाह...।"

"माँ !" तीर खाये घायल की तरह वह तड़प उठी। फिर उसने खाने की कोशिश की पर वह नहीं खा सकी। हाथ-मुँह धो कर कमरे के भीतर आ गई। उसकी आँखें गीली हो गईं थीं।

"मैंने यह क्या कर दिया ?" साधना ने अपने आप से यह प्रश्न किया। "मेरी मति भी क्या घास चरने जंगल में चली गई थी कि मैंने इस बेचारी दुखियारी से यह पूछा ? हे ईश्वर तू मुझे माफ करना और वह अमृत को मनाने उसके कमरे में चली गई।"

१३

***

"यह समय मनुष्य-सभ्यता का अन्तिम समय है। मनुष्य इतना छली और झूठा किसी भी काल में नहीं हुआ था।" अर्चना ने अपनी आँखों से आँसू पोंछते हुए अपने आप से कहा—"मानवी गुणों से एकदम वंचित इस पृथ्वी का यह दोगला आदमी अपने द्वारा किये गये छल को अपनी सफल मेधा-शक्ति समझता है। वह आदमी, लिंग भेद के कारण, जिसे मैं पुरुष का नाम देती हूँ नारी के तन को उसकी भावनाओं को, उसकी हर मानसिक इच्छा को अपने मन का खेल समझता है। क्या वह पुरुष नारी का उद्धार कर सकता है? यह अशेष!···क्या यह अशेष वह दोगली सन्तान नहीं है जो हिंस जानवर से अधिक खूंखार और मिल-मालिक से अधिक हृदयहीन होती है? मेरे जिस्म के एक-एक जोड़ को अपने चित्रों में उतार कर उन्हें झूठा कर दिया।···और अब वह मुझे उपदेश देने चला है कि तुम्हें यह काम सर्वथा त्याग देना चाहिए।··· तुम में रूप है, गुण है, फिर यह नीच काम क्यों कर रही हो?···ढोंगी कहीं का, कल तक वह मेरे पर अपने प्यार का हर शब्द इस तरह बिखेरता रहा जिस तरह भक्त लोग अपने देवता पर फूल बरसाते हैं और आज वह मुझे महायोगी की तरह उपदेश देने लगा है। देगा ही, क्योंकि उसकी अपनी अमृत आ गई है? वह अमृत जैसी उच्च खानदानी लड़की के होते हुए उस औरत से विवाह या प्यार नहीं कर सकता जो दस रुपयों के लिये निष्प्राण मूर्ति की तरह नंगी होकर अपनी विभिन्न मुद्रायें चित्रकार के समक्ष प्रदर्शित करती है और उसका मूल्य लेती है।"

"पर मैंने तो अपने नंगे शरीर की तमाम मुद्रायें केवल अशेष के हाथ बेंची हैं क्योंकि उसने ही तो कहा था कि अपने इस अप्रतिम सौंदर्य

को बाजारू न बनने देना।

"मैंने उसका कहना माना, अपने आपको उसी तक सीमित रखा। अपनी दो छोटी बहिनों की शिक्षा की परवाह किये बिना ही इस अशेष को अपने अन्तर का तमाम स्नेह, प्यार और अपनापन दिया। मैंने अपने नंगे शरीर का उचित मूल्यांकन भी नहीं किया क्योंकि मैं समझती थी कि अशेष उस गुमराह की लड़की का उद्धार करना चाहता है जो पतन के रास्ते अख्तियार कर रही हैं। वह एक भावुक चित्रकार है, उसकी दृष्टि में सुन्दर विचार और समता के भाव शोलों की तरह चमक रहे हैं। उसमें नई जवानी है, जोश के साथ होश भी है जो उसके विवेकी होने की पूरी गारण्टी देता है।...लेकिन अब वह मेरे भविष्य को रेत के टीले की तरह मिटा रहा है पर मैं भी अशेष को कहूँगी— तुम आदमी नहीं, आदमी के रूप में एक छल हो, प्रवंचना हो, भेड़िये हो।"

अर्चना यह विचारती हुई अशेष की बाड़ी (मकान) की ओर चली जा रही थी। जब वह कमरे के आगे पहुँची तो उसे किसी की आवाज सुनाई पड़ी।

अशेष अपने किसी परिचित कवि पत्रकार से घुल-मिल कर बातें कर रहा था। इस पत्रकार की उम्र तीस साल की थी, मुख्यतः यह कवि था पर कविता लिख कर वह अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता था, अतः वह—अभाव में स्वाभाव न बिगड़जाय—बचने के लिए पत्रकारी करने लगा। मुख्यतः पत्रकार न होने के कारण वह मजबूरन अपने पत्र के संचालक खुद ढूंढ़ा करता था, इस काम के लिए आप उसे महान् अन्वेषक बिना किसी हिचकिचाहट के कह सकते हैं।

अशेष उसके नए पत्र की डिजाइन हाथ में थमाते हुए बोला—

"क्यों भाई महेश यह कवर कैसा रहेगा ?"

"सुन्दर है, पर थोड़ा सैक्स अपीलिंग और होता तो बहुत ही अच्छा रहता। वैसे तुम्हारे मुकाबले का आ॰ यहाँ के चित्रकारों में बहुत कम पाया जाता है।"

"सच कहता हूँ कि हम-तुम शागिर्द बन जाएँ तो सोने में सुहागा हो जाये। अशेष ने कहा—"मुझे अपनी जीविका की चिंता नहीं है।" तुम तो जानते हो कि मेरे पास दो ऐसे पत्र हैं जिनसे जब चाहूँ हजार-पांच सौ आसानी से ले सकता हूँ। बस मुझे एक साथी चाहिए तुम्हारे जैसा।"

अब तक अर्चना उस के कमरे के दरवाजे से अपने कान सटा चुकी थी। उसने अशेष का अन्तिम वाक्य अच्छी तरह से सुना था—'बस मुझे एक साथी चाहिए—तुम्हारे जैसा"—और उसने बन्द कमरे की दरार से देखा तो उसको अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ—यह तो महेश है, जो कभी कभी उन्हें होटल में मिल जाता था, जिस के बारे में अशेष के बहुत ही निम्न विचार थे। अर्चना ने एक बार अपने चारों ओर इस मकसद से देखा कि कोई उसे देख तो नहीं रहा है और उसने अपने आप सोचा—अशेष तो कहा करता था कि यह महेश महा थर्ड क्लास और पतित आदमी है। देखते नहीं, इसकी चाल-ढाल को, बिल्कुल जनाना की तरह चलता है।......और बड़ा चरित्रहीन है – अप्राकृतिक व्यभिचार करता है। मैं तो अब कभी भी इस से बात नहीं करूँगा।"—अर्चना की आँखों में क्रोध और घृणा एक साथ पैदा हुई।

"महेश! तुम्हारे दोस्त ही तुम्हारा विरोध करते हैं, तुम्हारे बारे में निराधार अफवाहें फैलाते हैं।...मनसुख तो कह रहा था कि महेश मुझ से एक रुपया उधार ले गया था, वापस दिया ही नहीं।...मैं कहता हूँ कि यदि तुम व्यवस्थित काम करो तो सबको पीछे छोड़ सकते हो।" अशेष चापलूसी कर रहा था।

"छिः छिः छिः"—अर्चना ने मन ही मन कहा—"कितना फरेबी है यह अशेष? मुँह देखी बात करता है।"

"मैं किसी की परवाह नहीं करता अशेष, मेरे हाथ में इस बार ऐसा फाइनेन्सर आया है कि एक बार तो सिने-पत्रों में तहलका मचा

दूंगा।"—अभिमान से गर्दन हिला कर महेश ने कहा।

"मैं सब चित्र और डिजाइनें बनाऊँगा, क्यों?"

"पर उधार, पेमेन्ट अंक निकलने के बाद में मिलेगा।"

"कोई बात नहीं। अपने घर की ही तो बात है।"—लापरवाही से अशेष ने कहा।

"जंगली कहीं का! अर्चना के नथुने फूल आये—"कितना स्वार्थी है, एक दम शुद्ध स्वार्थी, गया बीता, बिल्कुल निकम्मा।...जी तो चाहता है कि जाकर इस ढोल की सारी पोल खोल दूँ।"—कहता था कि महेश से बात करना भी पाप है। बड़ा स्वार्थी है पैसा लेकर तो देना जानता ही नहीं। और अर्चना ने बिल्कुल पैनी दृष्टि से उस दरार से भीतर की ओर देखा।

"और तुम्हारी लौंडियों का क्या हाल-चाल है?"—महेश ने पूछा।

"मौज में है। अमृत अभी यहाँ आ रही है। अर्चना को आज 'कट' कर दिया। कौन ऐसी ऊटपटांग छोकरियों के पीछे भागे।"

"ऐसा क्यों? तुम तो उसकी बड़ी तारीफ कर रहे थे।"

"अरे यार सोचो तो, आखिर है तो मॉडल-गर्ल ही। ये मॉडल गर्ल्स एक तरह की रंडियाँ ही तो होती हैं, भला मैं उससे प्यार क्या करूँगा?"

अर्चना रोष से लाल हो गई, ठीक तपी हुई शलाखा की तरह—"मैं जरूर अभी इस कुत्ते को ठीक करती हूँ। थप्पड़ों से मारूँगी, लोग इकट्ठे होंगे, इसकी और मेरी इज्जत धूल में मिलेगी। लोग इस मक्कार के कमीनेपन से परिचित होंगे। और मेरे इस पेशे से कि मैं नंगी होकर अपना मॉडल बनवाती हूँ।...पर कोई बात नहीं। जो होगा देखा जायेगा।"—उसने निर्णय सा किया।

तभी भीतर से महेश का स्वर सुनाई पड़ा—"तुम हर आदमी से पहले-पहल इस तरह पेश आते हो कि जैसे तुम कोई महान्-आत्मा हो। तुम्हारे हर काम में देवता जैसा आदर्श टपकता है। तुम्हारे व्यवहार में

महान त्यागी के दर्शन होते हैं और तुम हो बिलकुल ही दूसरे टाइप के आदमी —अशेष कुछ बोले इसके पहले ही महेश हँस कर कहता गया —तुम्हारे दो रूप हैं अशेष।"

"नहीं मैं युग को पहचान कर चलता हूँ। ये मॉडल गर्ल्स पूँजी पर अपना आस्तित्व बेचने वाली होती हैं। मैंने तो अर्चना के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना ही नहीं चाहा। वह तो मेरे पर पूर्ण रूप से आसक्त थी। चाहती थी कि एक बार...एक बार मैं उसका आत्म-समर्पण स्वीकार कर लूँ, पर वह मुझे जरा भी पसन्द नहीं थी। ...मैंने तो उसे अपना जी बहलाने का खिलौना समझ रखा था। अब अपनी अमृत आ गई है इसलिये उसको नौ दो ग्यारह कर दिया। क्योंकि अमृत अर्चना को देखकर लाल-पीली भी हो जाती है।"

"तुम वास्तव में इस युग के प्रतीक हो" —महेश एक दम गम्भीर हो गया था।

"मतलब"—थोड़ा चौंका अशेष।

इस पूँजीवादी युग के तीन वर्ग हैं—शोषक शोषित एवं मध्यम। इस मध्यम् वर्ग के दो हिस्से हैं—उच्च मध्यम् वर्ग और निम्न मध्यम् वर्ग। तुम निम्न मध्यम् वर्ग के व्यक्ति हो, जिसे प्रगतिशील विचारों ने सफेदपोश कहा है। तुम दिमागी तौर पर शोषक वर्ग याने पूँजीपति वर्ग के निकट ही होते हो और साधन प्राप्त करते ही तुम ठीक पूँजीपति की तरह जिन्दगी के व्यवहार बर्ताव में उतार देते हो। हमारे पूँजीपतियों की तरह तुम भी औरत को एक उत्पादन का औजार मानते हो। जिस वस्तु का चाहे वह निष्प्राण हो अथवा प्राणवान् उसका उपयोग तुम अपने मन को केवल तुष्ट करने के लिये करते हो, वह तुम्हारी व्यक्तिगत मशीन ही समझी जायगी। यह प्रवृत्ति उन्मतत्ता की दशा प्राप्त कर के कामुकता का रूप धारण कर लेती है और कामुकता पूंजीवादी वर्ग का, एक ढहते हुए वर्ग का पतनशील आचरण है।... तुम्हारा रास्ता ठीक उसी पथ की ओर निःशंक रूप से बढ़ता जा

रहा है। पता नहीं—कब तुम अपने इष्ट-मित्रों की बहू-बेटियों पर कुदृष्टि रखने लगो और उनसे भी सन्तोष न पाकर कब तुम रंडीबाजी करने लगो और कब तुम अपने परिवार की किसी बहू पर हाथ साफ करने लगो।"

"इतना मूर्ख मैं नहीं हूँ।" अशेष का स्वर बिलकुल काँप रहा था। "यह एक शैतान के लक्षण हैं, आदमी के नहीं।"

"खैर, मैंने तो यूं ही बात पर अपनी बात कह दी। मेरा मतलब तुम्हारे दिल दुःखाने से कदापि नहीं था।" इतना कह कर महेश ने अशेष को उस पैनी निगाहों से देखा जिन निगाहों से छिपे चोर को सन्देहवश सिपाही देखता है।

न जाने क्यों अशेष सिर से पाँव तक काँप गया और हकलाता हुआ, झूठी हँसी हँसता हुआ बोला—"हम लोग व्यर्थ ही निष्प्रयोजय विषय पर चले गये।"

बात के रुख को एकदम बदलते हुए अशेष व्यंग्य से बोला—"इस बार का फाइनेन्सर तुम्हारे पत्र के कितने अंक निकालेगा ?"

"मैं क्या जानूँ ?"...मैं तो नौकर हूँ, अपनी नौकरी पक्की करूँगा।"

महेश ने शान्त स्वर में कहा—'एक बात सच-सच बताना, क्या तुमने अर्चना के साथ शारीरिक-सम्बन्ध स्थापित नहीं किया ?...चुप क्यों हो अशेष ?...सच-सच बता दो, तुम्हें मेरी कसम ? किया है न ?"

"हाँ"

"धोखेबाज।" अर्चना तड़प उठी। उसकी भृकुटियाँ तन गईं। उसके ललाट पर स्वेदकण उभर आये और वह सीढ़ियों के नीचे उसी क्षण वापस उतर गई। सीढ़ियों पर उसे अमृत मिली। अमृत और अर्चना दोनों ने एक दूसरी को सौतिया-डाह से देखा।

"तब तुम्हें अर्चना को अपनाना चाहिए, किसी के जीवन को व्यर्थ ही में बरबाद करना अच्छा नहीं है। फिर तुम जैसा उचित समझो वैसा ही करना।" महेश के स्वर में हल्की व्यथा थी।

"यह आवाज किस की है ?" अमृत को महेश की आवाज एकदम अपरिचित जान पड़ी। वह द्वार पर ठिठक गई। उसने कान लगा कर सुना। भीतर कोई कह रहा था—"यदि वह तुमसे प्रेम करती है तो तुम उससे शादी कर लो।"

अमृत ने खुशी-खुशी एक स्लिप उसके लैटर-बाक्स में छोड़ी जिसमें लिखा था—"आज शाम को ८ बजे "कैप्री" में मिलना। मैं तुम्हारा प्रतीक्षा करूँगी।" और वह वहाँ से चली गई। वह प्रथम बार अशेष से एकांत में मिलना चाहती थी।

मिल कर उसे बहुत सी बातें करनी थीं। एक अपरिचित आदमी के होते हुए वह किसी प्रकार उससे खुल कर सब कुछ नहीं कह सकेगी जो उसके मन में है।

उसके चेहरे पर दौड़ती प्रसन्नता को देख कर यह अच्छी तरह जाना जा सकता था कि अभी वह अपनी रूप की विकृति से बिलकुल अन-जान है।

"मैं सोचूंगा महेश।" अशेष ने इस बार गम्भीर होकर कहा।

"तुम्हें उसकी पवित्रता पर सन्देह है ?"

"हाँ, वह मॉडल गर्ल है, गराब है, पितृ-हीना है। अभी तो वह जवान है और मेरे सम्पर्क में इधर चार-छः माह से आई है इसके पहले ?······हालाँकि वह विश्वास के साथ कहती भी है कि मेरा किसी के साथ अनुचित सम्बन्ध न था और न है पर तुम तो जानते ही हो कि बँगाल की छोकरियों की पवित्रता का कोई भरोसा नहीं। इनका प्यार बरसात की तरह होता है, बरसा और अपना अस्तित्व मिटा दिया।"

'ये फालतू तर्क तुम्हारे बचाव के खोखले उदाहरण हैं।"

"क्या कहते हो महेश, यहाँ की मिट्टी का ही असर ऐसा है।··· व्यभिचार यहाँ अपनी चरम सीमा पर है। यहाँ का प्यार पैसा का पर्यायवाची है।" अशेष ने विश्वास के साथ कहा।

ठीक है—महेश ने उठते हुए कहा—" वर्तमान युग के तमाम सम्बन्ध 'अर्थ' पर ही निर्भर हैं। क्या भाई-भाई क्या मां-बाप, क्या पति-पत्नी और क्या मित्र-मित्र, सब के सब पवित्र सम्बन्ध के आवरण में एक आर्थिक सम्बन्ध रखते हैं। यदि हम परस्पर उन इच्छाओं की किसी न किसी अंश में पूर्ण नहीं करते हैं तो हमारे बीच कटुता और द्वेषता जन्म ले लेगी।······अच्छा, काफी समय हो गया है, मैं चला। लेकिन कह कह देता हूँ कि इस युग को इस भयंकर नतीजे से टकराना होगा"—वह कमरे से बाहर हो गया।

१४

***

चौरंगी

कलकत्ते की रंगीन जगह।

शाम का समय।

नर-नारियों का शोर-गुल।

बिजलियों की चमक-दमक।

प्रेमियों के जिन्दा दिल जोड़े।

फुदकती हुई एंग्लो-इण्डियन छोकरियाँ जिन्हें हम तितलियों के नाम से भी पुकारते हैं।

बंगाली लड़कियों की हिरणी सी दौड़ती हुई मादक आँखें।

फेरी वालों की कर्कश-भद्दी आवाजें।

भिखारियों की करुणा भरी वाणी में प्रार्थनायें।

इस अच्छे-बुरे वातावरण में "कैप्री" बसी हुई थी। अपनी बनावटी नई डिजाइन के कारण वह कुछ दिन तक होटल-प्रेमियों के आकर्षण

की विशेष वस्तु बनी रही। पर धीरे धीरे वह अपना आकर्षण इस लिए खो बैठी कि उस में और होटलों में रेस्टोरेन्टों की तरह सुन्दर म्यूजिक तथा नृत्य का प्रबन्ध नहीं था।

"कैप्री" में अशेष बेचैन सा अमृत की प्रतीक्षा कर रहा था। उस की दृष्टि रह-रह कर दरवाजे की ओर उठ जाती थी और कभी-कभी कैप्री के मोटे शीशों को पार कर-सड़क पर।

उस के ठीक सामने एक मारवाड़ी युवक बैठा था। सेठों और फैशन परस्त समाज के बीच की श्रेणी के प्रतीक सा। बात चीत से पक्का व्यापारी सेठ और दिखावट से महान आधुनिक उच्च शिक्षित याने उच्च निम्न वर्ग का पैंट-कोट पहने, सिगरेट फूँकते हुए।

वह बार-बार एक-एक बैरे से पूछ रहा था "वह आई थी ?"

वह कौन ? यह अशेष नहीं जान सका पर बैरा अच्छी तरह जान गया। बैरे ने दाँत दिखाते हुए कहा-"जी नहीं बाबूजी आज हमने उसे देखा ही नहीं।"

"साली बंगालिन है"—वह मन ही मन बड़बड़ाया। उसकी आँखें औसत आकार से बड़ी हो गईं—"कैसी लौंडिया मिली है ? महीने में दो बार अकेली आएगी और एक बार अपने किसी भाई-बंधु के साथ, मुलाकात का समय देगी तो लंच का।...और आज यहाँ आई ही नहीं।... जरूर वह मुझे बनाती होगी। सोचती होगी... खूब गधा फाँस लिया है। इशारों पर नाचता है, रौब भी मानता है और उस के पल्ले भी कुछ नहीं पड़ता। उस युवक ने मुट्ठी बाँध कर हल्के से अपने आगे की मेज पर मारी जैसे वह मन ही मन यह निर्णय कर रहा हो—"आज उस से फैसला कर ही छोडूंगा।"

दूसरे ही क्षण अशेष ने देखा कि युवक ने अपनी दोनों आँखें इस तरह बंद कर ली है जैसे वह कोई स्वप्न देख रहा हो। मधुर और सुखद स्वप्न। तभी तो उस के अधरों पर मुस्कराहट दौड़ रही है। उस के चेहरे पर कामोत्तेजना-जनित प्रसन्नता नाच उठी है। अशेष

को ध्यान आया कि ठीक ऐसी ही प्रसन्नता उस के चेहरे पर तब नाचा करती है जब वह समाधिस्थ सा हो कर अमृत या अर्चना के अंग-प्रत्यंग का नग्नता से खुल कर वर्णन करता है। कदाचित यह भी अपनी प्रेमिका के चाँद से मुखड़े, गाल, और शेष अंग-प्रत्यंग की बात सोचता होगा।

"अशेष !"—अमृत ने उसे चौंका दिया।

"अमृत !"—अशेष ने देखा कि अमृत का आधे से अधिक मुँह ढँका हुआ है। उस ने उस का विशेष कारण समझा। वह मारवाड़ी युवक उठ कर चला गया। उस की आँखों में असन्तोष आँख के आँसू की तरह साफ झलक रहा था।

"तुम्हारी स्लिप मिल गई थी। क्या तुम दोपहर को वहाँ आई थी या स्लिप किसी और के हाथ भिजवा दी थी ?" शीघ्रता से अशेष ने कहा।

"मै खुद ही गई थी।"

"फिर लौट क्यों गई ?"

"वहाँ एक तीसरा आदमी बैठा हुआ था।"

"तुम अपने मुंह से पर्दा क्यों नहीं हटाती, क्या यह तुम शिमले से नई सभ्यता सीख कर आई हो ?"—अशेष के स्वर में उपहास सा था।

"नहीं अशेष !"—उस का स्वर धीमा हो गया—"वहाँ मेरे साथ एक दुर्घटना घट गई थी, इस लिए मैं अपने परिचितों के सामने यह घूंघट नहीं हटा सकती।"

"क्यों ?"

"मेरी मर्जी।"

"लेकिन मैं तो...?"

"हाँ, तुम तो मेरे होने वाले पति थे।"

"थे क्यों, हूँ।"—अशेष के स्वर में अधिकार था।

"नहीं हो ?"

"तो क्या तुमने......।" अशेष पर मानो बिजली सी गिर गई। वह अपने स्वर को सँभालता हुआ बोला—"तुम्हारे माँ-बाप राजी नहीं हैं क्या ?" और वह अमृत की ओर बिना देखे कहता ही गया—"मेरे एक दोस्त का कहना है कि ये पंजाबी छोकरियाँ प्रेम के मामले में आगे चल कर जरूर धोखा देती हैं।...अमृत ! तुम्हारी इस बात से मुझे बहुत दुःख होगा। हार्दिक क्लेश होगा।"

"मैं जानती हूँ पर तुम्हारे विचार अब मुझे स्वीकार नहीं कर सकते।" और उसके मस्तिष्क में अशेष के कहे शब्द एक बार अच्छी तरह गूँज गये—(मैं सौंदर्य का पुजारी हूँ, वह भी नारी-सौंदर्य का, आत्मा के सौंदर्य पर मुझे कोई विश्वास नहीं। मैं उसी सौंदर्य पर अपनी समस्त भावनाओं को न्यौछावर करता हूँ, जिसे मैं स्पर्श कर सकता हूँ भोग सकता हूँ।)

'जरूर तुम्हें किसी ने बहकाया है या तुम स्वयं किसी और पर रीझ गई हो।...बुरा मत मानना अमृत। तुम निराधार बातों से मेरे और अपने प्यार के पुराने सम्बन्धों को तोड़ना चाहती हो,...तोड़ लो, पर मैं जिन्दगी भर तुम्हें नहीं भूलूँगा।"

अशेष के चेहरे पर रुआँसी झलकने लगी। उसके चेहरे के भावों से साफ झलक रहा था कि उसे हार्दिक वेदना है, मानसिक कष्ट है।

"मैं नहीं चाहती कि तुम्हारी भावनाओं को अधिक ठेस लगे, पर यदि तुम मेरी मजबूरी को लाँछन का रूप देने लग गये हो, तब मुझे सत्य का उद्‌घाटन करना ही पड़ेगा।"—और उसने अपने मुँह से पर्दा हटा दिया

"अमृत !" एक हल्की चीख सी निकल गई अशेष के मुँह से।

बैरा जो चाय रखने आया था सिहर कर काँप सा गया।

"सत्य को जानने के बाद अब तुम अपने इरादे को खुशी से बदल सकोगे।"—हृदय के उठते हुए तूफान को अमृत ने दबाया। वह कभी-

कभी अपने ऊपर के दाँतों से निचले होंठ को काट सी लेती थी। उसकी आँखें तर हो गई थीं। पर अशेष चाय के प्याले की ओर ध्यान न देकर अमृत के विकृत-भयानक चेहरे को देख रहा था। वह देख रहा था उसके गुलाबी होंठ का कटा रूप, वह देख रहा था उसके गाल का गहरा क्रास।

"यह क्या हुआ अमृत ?" बड़ी मुश्किल से अशेष बोला।

"विधाता की नियति का व्यंग उपहास; प्रकृति का निर्मम प्रकोप। मैं ऊँची चट्टान से गड्ढे में गिर पड़ी।"—और अशेष का हाथ अपने हाथ में लेती हुई वह बोली—"प्रकृति के इस दंड ने मेरे जीवन के रास्ते ही बदल दिये हैं। जो व्यक्ति मुझ पर जान देते थे, वे ही मुझसे कतराने लगे हैं। सच कहती हूँ कि इस रूप की विकृति ने मेरे प्यार का अधिकार छीन लिया है। अशेष !—उसकी निगाह में चाय का प्याला आ गया था इसलिये वह उसे उठा कर पीती हुई बोली—"पहले-पहल मैं इतनी दुखित रही कि एक बार तो मैंने जहर खा लिया था और अब अपने मन को समझाकर बैठ गई हूँ। जो हो गया सो हो ही गया, अब उसके लिये पश्चाताप करना व्यर्थ है, पर अशेष ! क्या तुम मुझ से वास्तव में नफरत करते हो ?"

अशेष चुप रहा।

"मैं तुम से साफ शब्दों में इसलिये पूछ रही हूँ कि क्या तुम मुझे उतना ही प्यार करोगे, जितना पहले करते थे।...मैंने खुद ने यह निश्चय कर लिया है कि मैं तुम से शादी नहीं करूँगी पर कम से कम पुराने सम्बन्धों के कारण मैं तुम से इतनी तो अपेक्षा रख सकती हूँ कि तुम मुझ से उतना ही प्यार करो जितना पहले करते थे।"

अशेष निरुत्तर रहा। उसके दिमाग की दशा ठीक उस पानी जैसी थी जिसे ठंडे रेफरीजरेटर में रख दिया हो और वह जमकर बर्फ हो गया हो। वह न तो कुछ विचार सका और न अमृत के इस दूसरे प्रश्न का इतनी शीघ्रता से कुछ उत्तर ही दे सका। उसे महसूस हुआ कि

उसके सोचने की तमाम शक्तियाँ जमकर बर्फ हो गई हैं। उसने बहुत प्रयत्न किया कि वह कुछ न कुछ अमृत को साँत्वना हेतु कहे, पर उसका साथ उसकी जुबान तथा दिमाग दोनों नहीं दे रहे थे।

मेरे ख्याल से तुम्हारी चुप्पी इस बात की प्रतीक है कि तुम मुझ से उतनी घृणा करते हो जितनी इस होटल का बैरा, एक राह चलता अदना आदमी।...लेकिन अशेष मैं तुम्हें उतना ही प्यार करती हूँ जितनी पहले।...अच्छा नमस्ते!"

अमृत उठी। उस' एक पल अशेष को चाह भरी दृष्टि से देखा और कैप्री से बाहर हो गई।

अशेष ने कुछ कहने के लिए जुबान खोली पर वह कह न सका। उसकी जुबान तालू से सट कर रह गई, उसे ऐसा महसूस हुआ और वह एक लम्बी साँस ले बैठा।

रात हो गई थी। चौरंगी की रंगीनी पूर्ववत् थी। अन्धा गायक हाथ में बैंजो लिये सड़क पर घूम रहा था। प्रत्येक होटल में रौनक नजर आने लग गई थी।

अशेष इस रौनक से दूर मैदान की ओर जा रहा था। वह इस समय एक भाग्यवादी की तरह अपने जीवन का विश्लेषण कर रहा था—"दुनियाँ में मनुष्य के करने से कुछ नहीं होता, जो होता है तकदीर का लिखा ही।"

मैदान में गहरा अँधेरा छाया हुआ था। वह अँधेरे को चीरता हुआ बढ़ता ही चला जा रहा था—"मैं उस जगह बैठूंगा जहाँ इतना गहरा अँधेरा होगा कि मनुष्य को अपनी आकृति ही न सूझे।" और वह बढ़ता-बढ़ता ब्लैक रोड पर चला गया।

वह ब्लैक रोड के एक पेड़ के तले बैठ गया और मन के आवेग को शान्त करने लगा। पर उसके विचार अमृत के चारों ओर बड़ी तेजी से घूम रहे थे। काफी उधेड़बुन करने के बाद उसे इस बात में शत्-प्रतिशत् सत्य की प्रतीत हुई कि अमृत अपने आप को जितनी अधिक भयानक

समझती है वह उतनी भयानक नहीं है। उसे देख कर वह आप भी भय खा सकता है जिसे कुरूपता से आन्तरिक घृणा है।...व्यर्थ ही वह इतनी गहराई में चली जाती है जहाँ सिवाय दुख के उसे कुछ नहीं मिलता।

तभी उसे एक मोटर में से किसी युवती की खिलखिलाहट सुनाई पड़ी। वह चौंक गया। उसके कान खड़े हो गये। मोटर की रफ्तार बहुत धीमी थी। उसमें से किसी पुरुष का भारी स्वर सुनाई पड़ा—

"हँसना छोड़ो प्रतिमा, जल्दी से नंगी हो जाओ।"

"नंगी।" अशोष की रग-रग में यह शब्द बिजली की तरह दौड़ गया। तब उसे ख्याल आया कि यह ब्लैक-रोड है जहाँ व्यभिचार का एक नया तरीका प्रयोग में लाया जाता है। दो-दो तीन-तीन इन्सानों के बीच नारी यंत्र सी पड़ी रहती है— अपना अस्तित्व भूल कर, और कई पुरुष उसके पुर्जे धीरे-धीरे बेकाम करता जाता है। वह यह भी जान गया कि इस रोड के बारे म अक्सर कहानियाँ ही सुनता था पर आज उसने उस घटना को अपनी आँखों से देख लिया कि इस प्रकाश-विहीन सड़क पर मनुष्य आदिम-बर्बर युग की भाँति नारी के साथ पेश आता है।

तब वह अपने भारी कदम उठाता चौरंगी की ओर वापस चला।

१५
***

१५ दिन बीत गये ।

इन पन्द्रह दिनों में अशोष की परेशानी खत्म हो गई थी। अमृत की व्यथा उत्तेजना से परे होकर विचार-शील बन गई थी। उसके मन में अपने प्रति काफी असन्तोष था पर मजबूरी का नाम महात्मा इस बात को वह भलीभाँति समझ गई थी। इसलिए वह बाहर से अपने आपको प्रसन्न बनाये रखने की भरपूर चेष्टा करती थी। उसने अपनी नई 'कम्पनी' बनानी शुरू कर दी थी। उसके व्यक्ति कम से कम उससे सहानुभूति पूर्ण बर्ताव तो जरुर रखते थे। यह कम्पनी थी—महान् ईसा के भक्तों की।

वह गिरजों में आने-जाने लगी। वह अपनी नई सहेली 'आइस्टिन' के साथ पार्क-सर्कस के उस मकान में जाती थी जहाँ 'बाइबिल' के पाठ पढ़ाये जाते थे। अब वह अपने समय का अधिकाँश भाग अध्ययन में खर्च करती थी। उसने सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी, निराला, प्रसाद की कविताओं का गहरा अध्ययन किया। उसे प्रसाद की कामायानी सभी विदेशी कवियों की कृतियों से महान् लगी। केदार और शंकर शैलेन्द्र की जन कवितायें उसे बेहद पसन्द थी।

कथाकारों में उसे सब से अधिक पसन्द यशपाल थे। वैसे वह ख्वाजा अहमद अब्बास के कहानी के टेकनिक में किए गये नये प्रयोग का लोहा मानती थी।

उसे चीन के प्राचीन कवि लाओत्से की यह कविता बेहद पसन्द थी जिसमें उसने युद्ध में प्राप्त विजय के प्रति उद्गार प्रगट किये थे। वह अक्सर जब कभी किसी समाचार पत्र में युद्ध की सम्भावना या असंभा-

बना के बारे में कोई समाचार पढ़ती तो उन पंक्तियों को इस तरह गुनगुनाया करती थी जैसे वह युद्ध से आतंकित होकर मन्दिर में कोई प्रार्थना कर रही हो—

"विजय में भी सौन्दर्य नहीं है,
जो इसे सुन्दर कहता है,
वह वही है जो हत्या में आनन्द मानता है।
जो हत्या में आनंद मानता है,
उसकी संसार पर शासन करने की महत्वाकांक्षा
कभी पूरी नहीं होती।
जनता की हत्या पर
दुःख के आँसू बहाये जाने चाहिए......।"

फिर वह घंटों सोचा करती थी कि इस पृथ्वी पर ऐसा कठोरतम आदमी भी हो सकता है जिसे हत्या में आनन्द का भास होता है - तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। यदा-कदा वह भावना में बह कर महसूस किया करती थी कि ऐसे एक आदमी नहीं हजारों आदमी हैं जो हँसते-हँसते ठीक मशीन की तरह आदमी की हत्या कर देते हैं। क्या दंगों में ऐसा नहीं हुआ था ? उसका अन्तरतम स्वतः ही उत्तर देता—हाँ। और उसके समक्ष कई घटनायें साकार सी होकर नाच उठतीं।

आइस्टिन के बारे में उसके बहुत अच्छे विचार थे। 'ऐसी लड़की जिसकी आत्मा और बाह्य सौन्दर्य की चमक एक सी है, जिसके विचारों में पतन की ओर बढ़ती हुई पाश्चात्य-सभ्यता का जरा भी कुप्रभाव नहीं है, जो किसी को भी गिरी हुई नजर से नहीं देखती, वैसी लड़की से मित्रता बढ़ना अपना सौभाग्य समझना, सोच कर प्रायः अमृत गर्व से फूल सी जाती थी। आइस्टिन की उम्र तीस की थी। उसका बाप पंजाबी था, जिसने उसकी माँ के प्यार में पड़ कर बाद में अपना धर्म परिवर्तन किया था। शादी के बाद उस पंजाबी ने उसकी माँ पर सन्देह किया। उसे चरित्रहीन कहा तब उसकी माँ विक्षुब्ध हो उठी। उसने

रोकर देशराज से प्रार्थना की थी कि वह अपने दिल के वहम को बिलकुल निकाल दे। मैं ठीक पहले की तरह पवित्र हूँ तब देशराज ने उसकी माँ के निर्दोष गाल पर चाँटा मार दिया था। उस दिन से उसकी माँ ने चार दिन तक खाना नहीं खाया और न ही देशराज ने उसे मनाया ही कि तुम जाकर खाना खा लो। वह भूखी रही, उदास रही, पीड़ित रही...। ठीक चौथे दिन जब देशराज ने मजबूरन यह कहा कि तुम खाना खालो डार्लिंग, मुझसे भूल हो गई तो आइस्टिन की माँ ने सब कुछ भूल कर खाना खाया।

फिर उसका परिवारिक जीवन उस चिटपिटे अंगारे की तरह चिड़-चिड़ा हो गया जो एक पल शान्त रहता है और दूसरे पल फिर चिड़-चिड़ा उठता है। इसी बीच आइस्टिन की माँ के पेट में आइस्टिन के बीज पड़े।

नारी के शरीर में नये इन्सान के बीज, नई जिन्दगी और नई खुशी के होते हैं। जननी बनने से वह जिस अलौकिक शान्ति का अनुभव करती है, वह शान्ति वर्णन के बाहर की कल्पना है। वह पति के तमाम अत्याचारों को भूल कर उसके नये रूप के पालन में दत्तचित हो जाती है। वह इसका भी ख्याल नहीं रखती कि वह जिस इन्सान को जन्म देने जायेगी वह उसी इन्सान का प्रतिरूप है जो स्वभाव का गन्दा, औरत को पीटने वाला शकी और क्रोधी है। बस वह भी विश्व की तमाम औरतों की तरह एक विश्वास लेकर—मेरे भविष्य के दुख-दर्दों का यही सहारा होगा—उसे पनपने देती है।

नारी जीवन की यही तो महानता है।

उसी महानता की गौरवानुभूति लिए आइस्टिन की माँ ने पारिवारिक विपत्तियों की चिंता न करते हुए आइस्टिन को जन्म दिया। अपनी बच्ची के प्रथम क्रन्दन पर उसकी आँखों में ममता आँसू बन के चमक उठी। उसने मन ही मन प्रभु ईसा से प्रार्थना की और अपने पापों की क्षमा याचना माँगी—" प्रभु ! हमारे पापों को क्षमा करना तथा इस बच्ची

के जीवन की रक्षा करना।"

बीस दिन तक देशराज अपनी बच्ची को एक नजर देखने के लिए न आया और न ही उसने आइस्टिन की माँ विक्टोरिया को पैसे ही भेजे। इससे उसकी आत्मा को मार्मिक आघात पहुँचा—क्या मेरी बच्ची इतनी बदनसीब है ? उसने सिसकते हुए अपनी बच्ची के छोटे-छोटे मुलायम गालों को चूम लिया। उसने उसे अपने गर्म सीने से कई बार चिपकाया। उस समय उसके चेहरे पर ऐसे भाव पैदा हुए जैसे उसकी बच्ची को छीन कर कोई ले भागना चाहता है।

ठीक दो माह बाद देशराज ने आकर विक्टोरिया पर घृणा से थूका—"छिनाल कहीं की, यह बच्ची किस कमीने की है ?"

विक्टोरिया हत-प्रभ हो गई। वह देशराज को इस तरह घूरने लगी जैसे वह उसका बिलकुल अपरिचित हो और वह उसे पहचानने का प्रयत्न कर रही है।

'क्या फटी-फटी निगाहों से देख रही है कलमुंही ?" देशराज की आँखों में हिंस्र पाशविक क्षुधा चमक उठी—"मैं पूछता हूँ कि यह बच्ची किसकी है ?"

"तुम्हारी, बिलकुल तुम्हारी।" क्रोध से तुनक पड़ी विक्टोरिया—"क्या इसके चेहरे में तुम्हें अपना प्रतिबिम्ब दिखलाई नहीं पड़ता ?"

"नहीं।"

"कुत्ते !"—विक्टोरिया आवेश में काँप रही थी—"फिर कभी तुमने मेरे चरित्र पर लाँछन लगाया तो अंजाम बहुत बुरा होगा।"

विक्टोरिया की इस चुनौती पर देशराज का पुरुषत्व चीख पड़ा 'धमकियाँ दे रही है मुझे ···मैं तेरी जान निकाल दूँगा ! मैं तेरी जान निकाल दूंगा···!!"

"निकाल दो, पर जिंदा तुम भी नहीं रह सकोगे, समझे।" नारी का विद्रोह आखिर प्रत्यक्ष रूप में आ ही गया। उसने भी पुरुष के अनुचित अत्याचार के विरुद्ध अपनी कमर कस ही ली।

"चुप रह।" कह कर देशराज ने एक चाँटा विक्टोरिया के गाल पर दे मारा। विक्टोरिया जड़ हो गई—पाषाण की तरह। उसकी आँखों में हिंस्र-भूख जाग पड़ी। बहते हुए आँसुओं में विनती की जगह प्रतिशोध की भावना चमक उठी। वह उसी विचित्र-मौन को लिये उठी। रसोई घर की ओर बढ़ी। एक बड़ा चाकू लिये लौटी पर तब तक देशराज चला गया था। लेकिन वह कुछ देर तक दरवाजे पर इस तरह की मुद्रा बना कर बैठी रही जैसे एक गुण्डा अपने विपक्षी गुण्डे पर प्रहार करने की ताक में कान खड़े किए हुए बैठा रहता है।

इसके बाद देशराज लौट कर नहीं आया हालाँकि विक्टोरिया ने अपने प्रभु ईसा से उसके लिए, उसके बुरे कर्मों के लिये कई बार माफी माँगी। अन्त में वह निराश होकर अपनी बच्ची का पोषण करने लगी। उसके पोषण के ये अठारह साल उसने विकट आर्थिक परेशानियों में बिताये थे और जब से आइस्टिन खुद नर्स बन कर कुछ उपार्जन करने लगी थी तब से वे माँ-बेटी उतने ही खुश थीं जितने सवेरे के दो गुलाब।

"जो होना था वह तो हो ही गया, अब उसके लिए पश्चाताप करना व्यर्थ है।" अपने रूमाल से अमृत के आँसुओं को पोंछती हुई आइस्टिन अत्यन्त शान्त और हमदर्दी भरे स्वर में बोली—"मरे हुए रोने से, आँसू बहाने से कभी भी वापिस जिन्दा नहीं हुए, यह चिरन्तन सत्य है।"

पर अमृत एक बच्चे की तरह रोती ही जा रही थी।

"क्यों अपने शरीर का नाश कर रही हो अमृत ? हर व्यक्ति के साथ जीवन में ऐसी कई दुर्घटनायें घटा ही करती है। जरा सोचो न, तुमने तो अपने माँ-बाप का एक सा प्यार पाया, पर जरा मुझे तो देखो मैं कितनी बदनसीब हूँ कि अपने पिता को देखा तक नहीं, वह कैसा था गोरा या काला, उसकी आवाज कड़वी थी या मीठी, वह सिगरेट पीता था या चूरूट, मैं कुछ भी नहीं जानती, अमृत ! अभागों की जिन्दगी दुःखों का एक एलबम है जहाँ सुख को शीशे के प्रतिबिम्ब की तरह ठहरने का अधिकार है।" आइस्टिन ने उसका हाथ पकड़ा। उसे कपड़े

बदलने को कहा—"तुम कपड़े बदल लो, हम जरा घूमने चलेंगे।"

कपड़े बदलते हुए अमृत रोने के स्वर में बोली—"ऐसा लगता है आइस्टिन कि मेरे माँ-बाप मरे नहीं, वे कहीं घूमने चले गये हैं और अभी लौट रहे हैं और मेरा मन ठीक पागल की तरह मुझे कहता है—तुम बाहर मत जाओ अमृत, वे थके-माँदे आयेंगे, जरा उनका इन्तजार करो न।"

"यह उन्माद की अवस्था है अमृत !" आइस्टिन के स्वर में दृढ़ता थी—"यदि वास्तव में तुम्हें अपने जीवन से बिलकुल निराश होना है तो तुम इस प्रकार के विचारों में अपने आपको तल्लीन रखना। लेकिन सत्य यह है कि तुम्हारे माँ-बाप आज से कई माह पहले हैजे के रोग से मरे थे। वे न तो जिन्दे हैं और न वे कभी लौट कर आयेंगे।···चलो बाहर।"

अमृत को जबरदस्ती आइस्टिन के साथ बाहर जाना पड़ा।

वे दोनों चौरंगी की ओर जा रही थीं।

रात हो गई थी। चाँद की दुधिया रात थी जिसमें दूर तक फैला हुआ मैदान साफ नजर आ रहा था।

वे दोनों चौरंगी की जगमगाती दूकानों को देखती हुई पार्क सर्कस स्ट्रीस व चौरंगी के क्रास पर पहुँच कर मैदान की ओर बढ़ रही थीं। वहाँ से विक्टोरिया मेमोरियल' साफ दिखलाई पड़ता था। उन दोनों ने एकटक उसे देखा जैसे वे सोच रही हैं कि क्या उनकी स्मृति में भी ऐसा ही खूबसूरत स्मृति-मन्दिर बन सकता है ?

उन्हें मैदान को पार करते हुए डर लगा क्योंकि उन दोनों ने सुन रखा था कि इस मैदान में बड़े-बड़े सेठ-साहूकार तथा आफिसर छोकरियों को लेकर आते हैं और तफरीह करते हैं लेकिन उन्हें केवल एक खटीक जाति की प्रौढ़ औरत और बलिया जिले का जमादार आपस में एक-दूसरे से सटे हुए एक पेड़ की ओट में मिले। उन्हें देख कर इन दोनों को रोमांच सा हो गया।

विक्टोरिया मेमोरियल की चाहरदीवारी के भीतर एकदम शान्ति

छा चुकी थी। बाहर कुछ रौनक जरूर थी। कुछ मोटरें खड़ी थीं जिनका सहारा लिये उनके मालिक अपने-अपने चेहरों पर प्रदर्शन का भाव—"हम मोटर वाले रईस हैं"—लिये खड़े थे।

वे मेन-गेट के बाईं ओर थोड़ी दूर पर पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गईं। उनके सामने एक पारसी परिवार अपनी मोटर के पास दरी बिछाये बैठा था। उस परिवार के तमाम सदस्यों के मुखों पर जिन्दगी छाई हुई थी।

"देखो आइस्टिन, यह परिवार कितना सुखी है ?' अमृत ने उस परिवार की ओर संकेत करते हुए कहा।

"हाँ देख रही हूँ।" आइस्टिन ने उसकी ओर बिना देखे ही कहा—"दूसरों का सुख देख कर अपने को दुखी नहीं करना चाहिए।"

"हऽ हऽऽ !'—उसी परिवार की एक नवोढ़ा का संगीत की तरह मादक अट्टहास—अमृत ने मुड़कर देखा—वे दोनों आपस में हाथ मिलाते हुए एकान्त की ओर जा रहे थे।

"दोनों जवान हैं।"—अमृत ने सोचा—"इनकी बातें भी जवान होंगी, इनके दिल भी जवान होंगे, इनके कहकहे भी जवान होंगे और इनकी मुलाकातें भी कितनी जवान होंगी ?"

अमृत को अशेष के साथ बीती हुई मुलाकातें याद आ गईं। उसे भी अपने पर प्यार सा आया—इन्हीं पेड़ों के नीचे जब पूनम का चाँद जवान होता था तो वे दोनों वस्तु-स्थिति से बिलग भावना के सागर में डूबे इसी तरह हाथ में हाथ डाले झूमा करते थे — ठीक बहार की भाँति। वे दिन भी क्या दिन थे ? जान पड़ता था वे दिन कभी भी खत्म नहीं होंगे। हमारा प्यार कभी भी नहीं मरेगा, पर आज......।"

अमृत का हाथ हठात् अपने कटे हुए होठ और मास बने गाल पर चला गया। उसे छूते ही उसका चेहरा उदास हो गया। उसके रोम-रोम में इतनी पीड़ा हुई जैसे हर रोम के छिद्र पर एक बिच्छू डंक मार रहा

हो। उसने घबरा कर आइस्टिन के दोनों बाजू अपने हाथों से पकड़ लिए—"आइस्टिन"।

"क्या बात है ?"

"मेरा यह होंठ और क्रास ठीक हो जायेगा न ?"

आइस्टिन को शक सा हुआ कि वास्तव में अमृत थोड़े दिनों में जरूर पागल हो जायेगी। वह कुछ झल्ला कर बोली—"आखिर तुम बार-बार पागल की तरह क्यों यह सवाल कर बैठती हो ? सब ठीक-ठाक हो जायेगा, अपने को शान्त रखने की कोशिश करो।"

अमृत चुप हो गई। उसने अपने आपको यह सोच कर कि मुझे आइ-स्टिन जैसी अच्छी सरल मित्र को नाराज नहीं करना चाहिए,—शान्त हो गई।

सामने वाले युवक और युवती अँधेरे में अदृश्य हो चुके थे।

तब आइस्टिन मंगल की तरह उसके चेहरे की ओर संकेत करके समझाया—'प्रभु की दी हुई प्रत्येक वस्तु कोई न कोई अपना तात्पर्य रखती है। तुम्हें कुरूप बनानेवाला स्वयं प्रभु है, इसलिये तुम इसे वर-दान समझो। इसके लिये व्यर्थ का पश्चाताप करके अपने जीवन को और कठिन मत बनाओ। ऐसा करोगी तो तुम्हारा हर श्वास जहरीला बन जायेगा।"

अमृत ने आइस्टिन की ओर करुणा से देखा और मन ही मन अपने भाग्य को अच्छा समझा कि मुझे एक ऐसी मित्र मिल गई है जो अपने हृदय में एक माँ का दिल रखती है, ऐसी माँ का दिल जो अपने बदसूरत और बदमाश लडके को भी उतना ही प्यार करती है जितना अपने शरीफ और सज्जन लड़के को।

तब अमृत ने अपने हृदय की शंका आइस्टिन के सामने डरते-सहमते प्रगट कर दी—"मुझे बहुत डर लगता है आइस्टिन कि नहीं तुम भी मुझसे अपना मुँह न फ़ेर लो।"

'नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा—आइस्टिन ने अपना मुँह दूसरी

ओर घूमा लिया—"तुमने यह पूछ कर मेरी आत्मा को बहुत कष्ट पहुँचाया है अमृत ! तुम्हें इस बारे में सोचना तक नहीं चाहिए। रही तुम्हारे चेहरे की बात, आज के वैज्ञानिक युग में कोई भी ऐसा रोग नहीं है, जिसका इलाज न हो। विदेशों में चेहरे के दाग भी प्लास्टिक सर्जरी से मिटा दिये जाते हैं।" आइस्टिन की आँखों में विश्वास था—तुम्हारा यह कटा होठ ठीक हो ही जायेगा पर तुम्हारे चेहरे की विकृति नहीं मिट सकती।"

"कुछ तो ठीक हो जायेगी।"

"हाँ-हाँ !"—आइस्टिन उठ गई। उसका हाथ खींचती हुई बोली "चलो कहीं चाय पी जाय, बदन टूटने लगा है।"

वे दोनों मेन रोड पर आईं। आइस्टिन को अपने समाज की तीन चार युवतियाँ मिलीं। कितने प्यार और अपनेपन से वे युवतियाँ आइस्टिन से मिलीं थी कि अमृत के मन में भी चाह सी उत्पन्न हुई कि वे युवतियाँ उससे भी उतने ही प्यार से मिलें पर उन्होंने इस होठ-कटी से परिचय करना भी उचित नहीं समझा। उन्होंने आइस्टिन पर इस बात के लिये कि इसके कितने विचित्र मित्र रहते हैं—आश्चर्य प्रकट नहीं किया क्योंकि वे अच्छी तरह जानती थी कि आइस्टिन खुद भेदभरी है।

उन युवतियों ने आइस्टिन के हस्पताल के बारे में कई प्रश्न किये। आइस्टिन ने हँस कर सबका उत्तर दिया। लेकिन अमृत को इस बात के लिये अपमान अनुभव हुआ कि लोगों ने उसके बारे में जानने की चेष्टा क्यों नहीं की ? तब उसके मन में हमेशा चुभनेवाला काँटा चुभा—"वह बदसूरत है, उसकी आकृति पैशाचिक है।" और उसके चेहरे पर दुख सावन की घटा की तरह छा गया।

आइस्टिन ने सबको नमस्ते कह कर अमृत का हाथ पकड़ा और उसकी ओर बिना देखे ही कहना शुरू किया—'ये जितनी भी फैशन-परस्त चिड़ियायें हैं, पाश्चात्य सभ्यता की जिन्दा और अन्तिम तस्वीरें हैं। इनका नाश जरूरी है क्योंकि ये ईसा के धर्मोपदेशों को कानों से

जरूर सुनती हैं पर आत्मसात करके अपनी आत्मा को पवित्र नहीं बनातीं। इनमें भरती हुई पाश्चात्य सभ्यता के तमाम दुर्गुण हैं। शायद तुम नहीं जानती कि इनकी शान किस नींव पर जीवित है? अमृत! मेरे मन को बहुत तकलीफ होता है जब मैं अपनी इन मित्रों को देखती हूँ। कितनी बनावट है इनकी जिन्दगी के हर कदम पर। ये होटलों में घूमती हैं, शराब की गिलासों पर आधी रात तक बेहोश पड़ी रहती हैं और इनके पतियों का जीवन कितना करुण होता है, उसकी तुम कल्पना भी नही कर सकती?...

अमृत! इनमें से एक का पति मेरे पास अक्सर आया करता है, उसकी बातें बड़ी मार्मिक होती हैं। बहुत सी नर्सें उसे मेरा प्रेमी समझती हैं और जितनी उनकी सूझ-बूझ है, उन्हें ऐसा समझना भी चाहिये। पर वह मेरे पास सिर्फ अपनी मेम साहब की शिकायतें करने आता है। वह कहता है कि उसकी पत्नी १२५ रुपये माहवार कमाती है पर उसकी एक पोशाक दो सौ से कम की नहीं होती। अब आप बताइये ये रुपये कहाँ से आते हैं?...

मैं शीघ्रता में उत्तर देना चाहती हूँ—" मैं अच्छी तरह से जानती हूँ कि ये रुपये कहाँ से आते हैं? मेरे भाई! ये अपने सुख के लिये, अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिये, अपने आपको 'बड़ा आदमी' बतलाने के लिये तुम्हारी बीवियाँ अपने शरीर को एक मशीन बना देती हैं और ये कामुक आचरण वाले व्यक्ति इन मशीन नुमा औरतों के अंग-अंग का उपयोग करके बेकाम करते जा रहे हैं और एक दिन जब मिल की मशीन के पुर्जों की तरह इन बीवियों के पुर्जे घिस जायेंगे तब ये अपना दम तोड़ देंगी। जब ये मशीनें दम तोड़ देंगी तो इस यान्त्रिक सभ्यता का, पाश्चात्य सभ्यता का अन्त हो जायेगा। मशीन और मनुष्य में अन्तर न समझने वाली सभ्यता मानवता की सबसे बड़ी दुश्मन है।...

पर अमृत! मैं उसे इतना कटु-सत्य एवं पीड़ाजनक उत्तर नहीं देती हूँ, क्योंकि ऐसा करने से उसकी भावनायें बड़ा कष्ट पाती हैं। मैं

उन्हें समझा देती हूँ कि उन्हें भटकने दो, भटकते-भटकते वे सत्य को जान जायेंगी, हमारा प्रभु ईसा उन्हें सद्मार्ग पर अवश्य ले आयेगा।... इस उत्तर से उसके कलेजे को जरा भी ठंडक नहीं मिलती क्योंकि वह दाम्पत्य-सुख से भी वंचित रह जाता है और वह अपनी पत्नी से एकदम सम्बन्ध भी विच्छेद नहीं कर सकता क्योंकि वह खुद आर्थिक दृष्टि से बहुत मजबूर और परेशान है। तब वह समझौता करके अपने आप को जिंदा लाश की तरह जीवित रखने का प्रयास करता है।...ये हैं इनकी जिन्दगी की नंगी तस्वीरें।...अब तुम समझ गई होगी कि मैंने तुम्हारा परिचय उनसे क्यों नहीं कराया ?"

"आइस्टिन, मेरी बहिन !" अमृत गद्-गद् हो उससे लिपट गई।

"अमृत ! ये झूठे अहम् में पलनेवाली औरतें तुम्हारे दर्द की दवा नहीं बन सकती, दर्द को और बढ़ा सकती है क्योंकि ये अपने को बड़ी समझती हैं, अपने को इतना चतुर और समझदार समझती हैं कि इन्हें बात और व्यंग के भेद का भी नहीं पाता।"

"तो फिर जाने दो इन फालतू औरतों की चर्चा को, चलो मेगनोलिया में, जरा चाय पी जाय, क्यों ?"

वे दोनों पार्क-स्ट्रीट की ओर बढ़ चली।

मैगनोलिया में म्युजिक अपनी चरम-सीमा पर था। गायिका कोई अँग्रेजी गीत गा रही थी और लोग झूल रहे थे।

१६

***

"अपने अन्तर की सत्यानुभूति के साकार रूप को ही मैं वास्तविक, चित्रकला मानता हूँ। मेरा प्रत्येक चित्र मेरे अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक होता है। उसमें मेरे जीवन के दुख-सुख, जय-पराजय, उत्थान-पतन, आशा निराशा चित्रित रहती हैं। किसी भी चित्रकार का कोई भी चित्र उसकी मनःस्थिति का ही प्रतिबिम्ब होता है। उसके हृदय की पीड़ा को सहलाने वाला होता है तथा उसके मन के शिव को बखूबी तस्वीरों में तूलिका द्वारा चित्राँकन कर देता है। चित्रकार को अपनी चित्रकला को उतना ही महत्व देना चाहिये, जितना एक भक्त भगवान को देता है। क्योंकि चित्रकला एक साधना है और साधक जब तक उसके साथ तादात्म्य नहीं करता उसकी सफलता अनिश्चित है।"

"चाय ठंडी होने लग गई थी। अर्चना ने उसकी ओर संकेत किया—सन्त साहब ! पहले चाय तो पी लीजिये, नहीं तो वह पानी हो जायेगी।"

"ओह मैं तो बिलकुल ही भूल गया। भावुकता के बहाव में वस्तु-स्थिति से विलग होना कोई ताज्जुब की बात नहीं।"—कह कर अशेष ने चाय की चुस्की ली—"लेकिन मुझे हैरत इस बात की है कि मुझसे न बोलने वाली लड़की मेरे घर कैसे पधार गई ?"

'समय क्या नहीं करवा लेता अशेष ! मैंने सोच लिया था कि खुद-गर्ज आदमी की दोस्ती से जनवार की दुश्मनी कहीं अच्छी होती है पर तुम्हारे व्यवहार बर्ताव ने मुझे एक नई शिक्षा दी है।"—अर्चना का स्वर एक दम गंभीर हो गया—"मैं माडल-गर्ल, एक रंडी, तुमसे सौ

रुपये चाहती हूँ ।"

"रंडी ।"—अपने मन में इस शब्द को दोहरा कर अशेष काँप सा गया—"क्या इसे मेरे मन के विचारों का पता चल गया है ।...नहीं, ऐसा तो नहीं हो सकता...हो क्यों नहीं सकता ?शायद महेश ने अर्चना को सारी बातें बता दी हों ।"—उसके चेहरे पर संघर्ष स्पष्ट रूप में नाच उठा ।

'परेशान क्यों हो गये अशेष ?"

"नहीं तो ।...लेकिन आज मेरे पास सौ रुपये नहीं हैं ।"

"कहीं से उधार लाकर दो, मुझे सौ रुपयों की सख्त जरूरत है ।" अर्चना का स्वर एक कर्ज देने वाले व्यक्ति सा कर्कश और अधिकार पूर्ण था ।

"कहाँ से उधार लाकर दूँ ।"

"जहाँ कहीं से, यह मैं नहीं जानती ।"—और उसने तपाक से उसे याद दिलाया—"तुम्हारे पास तो ऐसे पत्र हैं जहाँ से जब तुम चाहो हजार पाँच सौ ला सकते हो ।"

अशेष झुँझला उठा—"क्या आज नशा करके आई हो ।"

"नहीं, झूठ का नशा उतार कर आई हूँ ।...मैं तुमसे प्यार नहीं कर सकती क्योंकि मुझे तुम से हार्दिक घृणा है ।...और तुम भी मुझे प्यार नहीं कर सकते क्योंकि मैं पूँजी पर अपना अस्तित्व बेचने वाली नारी हूँ ।"—अर्चना का स्वर तेज और गर्म था—"जब हम दोनों एक दूसरे को इतनी अच्छी तरह पहचानते हैं फिर प्यार के ढोंग की रचना कैसी ?"

"यह तुम क्या कह रही हो अर्चना ?"—अपने आप पर काबू पाता हुआ अशेष शान्त एवं धीमे स्वर में बोला—"तुम्हें किसी ने बुरी तरह से बहका दिया है। मैं खुद इस फिराक में था कि तुम से मिलकर अपने बीच की गलत फहमी दूर कर दूँ पर ऐसा अवसर ही नहीं मिला ।"

"आज तो मिल गया है अशेष बाबू ।" उसने अपना मुँह बिलकुल चाय के कप में केन्द्रित कर लिया—"मैं इतने दिन तक आपकी सेवा में इसलिये नहीं आ सकी कि मैं अपने बारे में कुछ निर्णय नहीं कर पा रही थी पर जब से मैंने अमृत बहन को देखा है तब से मैंने अपने और तुम्हारे बारे में एक निर्णय कर लिया है कि मैं तुमसे जरा भी सम्बन्ध नहीं रख सकती ।

"मत रखो"—क्रोध से अशेष की आँखों की त्योरी बदल गई—तुम अपने आप को क्या समझती हो ? मैं जितना ठंडा होता जाता हूँ, तुम उतनी ही गर्म होती जाती हो, क्या यह कोई शिष्टता है ।"

"शिष्टता यह है कि किसी को विश्वास देकर उसके तन-और मन से छल करना ? शिष्टता यह है कि अपने स्वार्थ के हेतु किसी की इज्जत पर हर किसी के सामने कीचड़ उछालते फिरना ।...अशेष-बाबू ! शिष्टता की दुहाई अब बहुत पुरानी पड़ चुकी है । कोई नया तिकड़म सोचिये ।"

"आखिर तुम चाहती क्या हो ?"

"सौ रुपये ।"

"किस बात के ।"

"अपनी मजूरी के ।"

"कौन सी मजूरी ।"

"मैंने जो मॉडल दिये, थे उनकी ।"

अशेष चुप हो गया है—निर्जीव सा—न कुछ बोला और न कुछ हरकत ही की ।

"कहो मेरे पैसे सच्ची कमाई के हैं या नहीं ?"

"......।"—अशेष इस बार भी मौन रहा । लेकिन उसने अर्चना को अन्तिम बार फुसलाने की चेष्टा की—"सौ रुपये कोई बड़ी बात नहीं है अर्चना, पर आदमी को अपने व्यवहार सुन्दर रखने चाहिये । जब व्यवहार सुन्दर रहेंगे तो कितने ही सौ रुपये मिलते रहेंगे ।"

"भले मानस की तरह उपदेशात्मक शैली में हर शरीफ बेईमान को बकना आता है। मैंने जब कभी भी अपने स्वार्थ की बात कही, तुमने इसी प्रकार उपदेश देना प्रारंभ किया।...पर जो तुम्हें और तुम्हारे वास्तविक जीवन को जान जायेगा, वह तुम्हें यदि दूसरी संज्ञा दे सकता है तो धोकेबाज ही, फरेबी ही, और छली ही।"

"अर्चना !"—अशेष इतने जोर से चीखा जैसे कमरे की दीवारें हिल जायेंगी। उसकी आँखों में क्रूरता दहक उठी। उसका सारा शरीर काँपने लगा।

अर्चना व्यंग से बोली—"चीखो अशेष चीखो, मैं तो मॉडल-गर्ल याने रंडी हूँ, पर तुम तो इज्जतदार हो, जमीदार के बेटे हो, कहीं तुम्हारी इज्जत में दाग लग गया तो फिर उतरने वाला नहीं।"

"आखिर तुम्हें हो क्या गया है ?"—अशेष समझौते के स्वर में गिड़गिड़ाया।

"मुझे जुनून हो गया है अशेष ! मैंने तय कर लिया है कि तुम जैसे विषैले कीड़ों को पनपने न दूँ जिनकी रग-रग में मक्कारी भरी पड़ी है, जिनमें जरा भी इन्सानियत नहीं है।"

"क्या ? इन्सानियत नहीं है, मैंने तुम्हारा कौनसा महल लूट लिया ?"

"नारी का सतीत्व ही उसके जीवन का महल होता है अशेष ! तुमने मुझे प्रेम का विश्वास देकर क्या छला नहीं ?...मॉडल-गर्ल होना पाप नहीं। पाप तो है पैसों के बदले अपने आप को बेचना, छल से नारीत्व को झूठा करना।"

"मैंने उसकी कीमत दी है।"

एक नारी की कीमत चुकाते-चुकाते तुम्हारी तमाम जमींदारी बिक जायेगी।" अपना मुँह दूसरी ओर घुमाते हुए वह धीरे से बुदबुदाई—"अभी तो उस की शुरुआत हुई है।"

"व्यर्थ का प्रलाप मुझे पसंद नहीं।"

"इसे व्यर्थ कहते हो ?"—बिलकुल नजदीक आती हुई अर्चना ऊँचे स्वर में बोली—"एक दम सच है, नंगा सच ।"

"जो करना है सो तुम कर लेना, अभी यहाँ से जाओ ।"—क्रोध व झुँझलाहट से परेशान हो उठा अशेष—"मुझे थोड़ा काम करना है ।"

"मैं अभी आई ।"—कह कर अर्चना कमरे के बाहर गई और अपने साथ मुश्की रंग की युवती तथा एक चाँद सा बच्चा अपनी गोद में लिए पुनः आई ।

अशेष उन्हें देख कर चौंक गया । उस की दोनों आँखों में क्रोध चमक उठा । वह बाज की तरह झपटता और शेर की तरह दहाड़ता उस बच्चे पर झपटा जैसे वह इस नए इन्सान को नोच लेगा, चबा जाएगा—"तुम लोग यहाँ कैसे आगए, मैं पूछता हूँ तू यहाँ कैसे आ गई ।"

"तुम्हारा बुड्ढा बाप ले आया ···अशेष ! तुम कुँवारे थे न, तुम्हारे माँ-बाप तो मर गए थे ?···बोलते क्यों नहीं; कमीनेपन की भी हद होती है । अपनी बीवी-बच्चे को छोड़ कर, महान् आत्मा बने दुनिया के सामने अभिनय करते हुए तुम्हें तुम्हारी आत्मा रोकती नहीं ? संभालो अपनी बीवी बच्चे को,···तुम्हारा बाप अपनी बूढ़ी इच्छाओं की लाश लिए बाहर खड़ा है । वह तुम्हारे लिए तुम्हारी माँ का आशीर्वाद लाया है कि मेरा अपना बेटा बड़ा आदमी बने ।"

अर्चना की आँखों में आँसू आ गए थे । वह अपनी आँखों को पोंछती बाहर चली गई ।

१७

***

"मैं पूँछता हूँ कि आप इसे यहाँ लेकर क्यों आए ?"—अपने पिता पर भूखे शेर की तरह हमला करता हुआ अशेष चीखा—"जरा मेरी इज्जत का तो ख्याल किया होता।"

अशेष के पिता भीगी बिल्ली की तरह विनती करते हुए बोले—

"जवान बहू को अपने पास कितने दिन रखता, पास-पड़ौस, जात-बिरादरी अँगुलिया उठाती हैं बेटा,…गाँव में अफवाह है कि तुम दूसरी लड़की से ब्याह करने जा रहे हो, ऐसी हालत में मैं यहाँ नहीं आता तो क्या करता ?"

"नदी में डूब मरते। महान कलाकार ने जोर का मुक्का मेज पर मारा—यहाँ आकर तो आपने मेरी इज्जत को धूल में मिला दी।"

"अपने बीवी-बच्चे को सँभालो, मैं तुम्हारे जैसे नीच बेटे का मुँह भी नहीं देखूँगा।"—पिता का स्वत्व भड़क उठा। अपने पुत्र का इस तरह का अनर्गल-प्रलाप सुनते-सुनते उनका कलेजा छलनी हो चुका था। आखिर वह भी इन्सान थे, उनकी भावनायें एक इन्सान के नाते बुड्ढी जरूर हो गई थी पर मरी नहीं थी। अपने स्वर में अंतर की आग भड़काते हुए पिता गुर्राया—"लोग कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा आदमी है, उसका दिल देवता के माफिक है, उस की बातचीत में छोटे बड़े का लिहाज है और सच तो यह है कि वह बिलकुल बदतमीज है।… सँभालो अपने बीवी-बच्चे को, मैं चला, कोई मैंने जिन्दगी भर का ठेका नहीं ले रखा है।"—अशेष का पिता हवा की तरह बाहर हो गया।

रात का अँधेरा अपनी जवानी पर था।

अशेष मेज पर अपनी टाँगें फैलाए सिगरेट फूँक रहा था। उसकी बीवी तारा अनमनी सी, क्लान्त सी बैठी अपने आराध्य देव को देख रही थी वह अपने लड़के को बन्दरिया की तरह सीने में छिपाए हुए थी।

पिता के चले जाने के बाद अशेष ने उसे एक नजर भी नहीं देखा उस ग्रामीणा-बाला के जिसका तन माँसल और छातियाँ ममता से भरी हुई थीं जिस के गाल फूले हुए थे और जिस की आँखों में प्रार्थना के साथ भय नाच रहा था, धरती की ओर अपनी दृष्टि गड़ाये बैठी थी—गुम सुम।

बच्चा रोया। माँ ने पुचकारा पर बच्चा चुप नहीं हुआ। रोता ही जा रहा था। कमरे के शाँत वातावरण में बच्चे के रोने की गूंज ध्वनित हो उठी। अशेष सगरेट को ऐश-ट्रे पर रख कर घायल सिपाही की तरह चीखा—"चुप करावो अपने बाप को।"

तारा ने उस के मुँह में अपना स्तन देना चाहा पर बच्चा स्तन न ले कर रोता ही जा रहा था।" यह ऐसे चुप नहीं होगा, इसे लात मार कर चुप किया जाएगा, कहाँ से आ मरे ?"

"मैं क्या करूँ, बच्चा चुप नहीं होता इस में मेरा कसूर है ?"

"कसूर तो सब मेरा है कि मैंने तुम से ब्याह किया।"

"मेरे पिता जी ने गले तो नहीं बाँधी थी। दहेज में पूरे दो हजार दिए थे।"

इस व्यंग से अशेष तिलमिला उठा, वहाँ से उठा। आँखों में उसके हृदय का राक्षस चमक उठा। तारा भय ग्रस्त हो गई। अशेष के उठने वाले कदम उसे अपने को रोंदते हुए जान पड़े। वह काँप उठी।

अशेष ने उस के केश को बेरहमी से खींचा—दहेज की बच्ची, जबान में लगाम लगायेगी या..."लगाऊँ दो-चार चोटें।"

"जान से क्यों नहीं मार देते।"—उस ने कटु वाणी से कहा—"जब बच्चा फूटी आँख नहीं सुहाता तो पैदा ही क्यों किया ?"

"मैं कहता हूँ चुप रह नालायक ?"—उसने ताड़ना दी।

"नहीं चुप रहूँगी ।"—तारा की आँखों में क्रोध चमक उठा ।

"नहीं रहेगी ?"

"नहीं ।"

अशेष ने एक जल्लाद की तरह निर्दय हो कर एक घूंसा तारा के गाल पर दे मारा—"अब की जबान चलाई तो धोबी के कपड़े की तरह पछाड़ दूंगा ।"

वह उसके और सन्निकट आती हुई बोली—"मैं कहती हूँ कि मुझे जान से मार कर हमेशा के झगड़े को ही खत्म कर दो ।"

तारा का सारा बदन काँप रहा था । एक तरह का पागलपन उस के सिर पर सवार था और अशेष उस के मारने की चेष्टा करते हुए भी मार नहीं पा रहा था जैसे उस की दिमाग की बात को हाथों ने मानने से इंकार कर दिया हो ।

अशेष ने मेज की ओर आते हुए तारा को एक धक्का दिया । उस का सिर दीवार से टकरा उठा । वह चोट से कराह उठी । उस की आँखों में आँसू आ गए ।

वह गुस्से से चिल्ला पड़ी—"भगवान के लिए मुझे जान से मार दो, मार दो न ।"

उसका पीर भरा स्वर कमरे में छा गया । अशेष का गुस्सा पल भर के लिए उस के हृदय से ओझल हो गया, शरमा कर उसने अपनी गर्दन झुका ली ।

बच्चा न जाने क्यों चुप हो गया था । तारा ने अपना गुस्सा अपने बच्चे पर उतारना शुरू किया—"तू पैदा होते ही क्यों नहीं मर गया ? तुझे डायन क्यों नहीं खा ?"—और वह फफक-फफक कर रोने लगी ।

अशेष झुँझला कर कमरे से बाहर चला गया ।

रात ढलती जा रही थी ।

अशेष चिंता से पीड़ित उद्विग्न और अशान्त कमरे के बाहर पड़ी आराम कुर्सी पर बैठा था । उसे अपने इस दुर्व्यवहार के प्रति आत्म-

ग्लानि हो रही थी। वह सोच रहा था—"मैंने विवाह के बाद तारा को जरा भी सुख नहीं दिया। मेरा पिता लुट भैया जमींदार होते हुए भी अपने को दस गाँव का मालिक समझता है, और है नहीं पचास बीघे जमीन का मालिक भी। इसी शान में उन्होंने यह शादी भी कर दी। क्योंकि तारा उनके मित्र की पुत्री जो ठहरी। शुरू में तारा बुरी नहीं थी लेकिन मैंने सिवाय अपनी वासना की तृप्ति के उसे थोड़ा भी सुख नहीं पहुँचाया। मैं केवल रात के मिलन को ही अपने जीवन का महान् आनन्द मानता था, फिर यह बच्चा पेट में पड़ा। तारा का पेट फूल गया। गर्भावस्था में भी मैं अपनी वासना को तृप्ति किये बिना नहीं रह सका। वासना का भूत, उसकी पशुता-बर्बरता उसके किसी कष्ट का ध्यान नहीं रखती थी। तब उसने विरोध किया। मैं जल-भुन उठा। वह पेट के दर्द का बहाना लेकर माँ के पास चली जाती थी और मैं तारा पर लाल-पीला होता रहा। अन्त में मैं वहाँ से आकर उच्च शिक्षा लेने के बहाने कलकत्ते आ गया यहाँ मैंने अपने सम्बन्धी प्रत्येक सत्य पर बखूबी पर्दा डाला।

मैं पढ़ने के नाम घर से हजारों रुपये मँगवाये और इधर-उधर उड़ा दिये। प्रेम के नाटक रचे, अमृत जैसी खबसूरत लौंडिया को फाँसा, विवाह करना चाहा पर भाग्य ने सब खेल बिगाड़ दिये।

और आज तारा भी यहाँ आ पहुँची। कल जब मेरे मित्र जान जायेंगे कि यह शादी शुदा है तो......। नहीं मैं कल सवेरे की गाड़ी से इसे गाँव पहुँचाने चला जाऊँगा।"

रात भर उसे नींद नहीं आई।

प्रभात की प्रतीक्षा में वह आकुल बार-बार पूरब की ओर ताक लेता था। कब सवेरा होगा—यही प्रश्न उसके मस्तिष्क में हर बार उठता और मिटता था।

सवेरा हुआ। उसने तारा को डाँटते हुए कर्कश स्वर में कहा—
'जल्दी से कदम उठाओ, गाड़ी का टाइम हो गया है।"

१६
***

अमृत हैरान हो गई। उसके नेत्र औसत आकार से अधिक बड़े हो गये, वह धीरे से कह उठी—केवल सौ रुपये ?" उसने नोटों को एक बार फिर गिना वे पूरे सौ ही थें।—यह सौ ही हैं—उसने विचारा।

बात यह थी कि अपने पिता की शेष पूँजी की अन्तिम बाकी यही रकम रह गई थी। अब उसे चिंता हुई कि वह अपना जीवन निर्वाह कैसे करेगी। यह सौ रुपये तो एक माह का खर्च है, बाद में ?—वह उन्मन होकर हाथ के सहारे मुँह को लटका कर बैठ गई। जीवन की दुरूह समस्या अब उसके सामने भयावह शैतान सी खड़ी थी। काफी विचार-विमर्श करके उसने तय किया कि वह इस बारे में आइस्टिन से सलाह-मशविरा करेगी।

वह उठी और कपड़े बदलने शुरू किये।

"आज दोपहर को तीन बजे उसे आइस्टिन के घर जाना है—"उसने अपने कमरे की खिड़कियों की ओर ताका और ताला बन्द करके बाहर चली।

"बीवी जी, चिट्ठी।" डाकिये ने चिट्ठी अमृत के हाथ में थमाई। पहले-पहल उसने चिट्ठी पर लिखे अक्षरों को पहचानने की कोशिश की। पहचानते-पहचानते ही उसने लिफाफा फाड़ डाला। चिट्ठी काफी लम्बी थी लेकिन एक अनजान की चिट्ठी को बिना पढ़े छोड़ना भी उचित नहीं था, अतः वह पुनः अपने कमरे में लौट आई और चिट्ठी पढ़ने लगी।

प्रिय बहिन,

प्रणाम् !

मेरा यह पत्र आपको आश्चर्य में अवश्य डालेगा क्योंकि मेरी और आपकी भेंट ऐसे स्थलों पर हुई थी, जहाँ आप मुझे देख कर चौंकी और मैं आपको देखकर चौंकी।...शायद आपने अपने प्रेमी के यहाँ मुझे देखकर यह भी समझा होगा कि मैं एक आवारा लड़की हूँ।... 'प्रेमी' शब्द के प्रयोग का तात्पर्य है—'अशेष' से।

उसी अशेष से जिसने एक दिन आपकी अनुपस्थिति में मुझे प्यार का यकीन दिलाकर मेरे सतीत्व को झूठा किया। आप जानती हैं कि नारी का सतीत्व जब तक अस्पृश्य है, तभी तक वह महान् है, श्रेष्ठ धर्म है, उसकी आन-बान है, पर जहाँ उसने एक बार किसी पुरुष के हाथों उसे सौंप दिया, वहाँ वह सिवाय झूठ के क्या हो सकता है ?

बहिन ! मेरा सतीत्व भी झूठा है। गरीबी और भूख की लाचारी ने मुझे हरा दिया। नौकरी न मिलने पर मैं माडल-गर्ल हो गई। अशेष ने मेरी गरीबी का उचित और सस्ता लाभ उठाया और यदि आपको भी झूठा कर दिया हो तो कह नहीं सकती।

यह अशेष जो प्रायः कहा करता है कि मैं कलाकार हूँ, मेरी आत्मा निश्छल और महान है, यह नवनीत सी मृदुल और निर्मल नभ सी स्वच्छ है एकदम छली, खोट्टा और आवारा है। अब वह आपके रूप पर प्यार की जगह दया अवश्य कर सकता है लेकिन मेरा पत्र उसके बारे में आपको इसलिये है कि ऐसे सफेदपोश समाज के लिये बड़े घातक सिद्ध होते हैं।...हालाँ कि मुझ जैसी तुच्छ लड़की को इस इस प्रकार की उपदेशात्मक शैली में प्रवचन देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि ये पंडितों, मौलवियों, पादरियों, और देवताओं की अपनी चीज है। पर जब अन्तःकरण वेदना से झकझोरित हो उठता है तो मन स्वतः ही पंडितों की भाषा में बोल उठता है।

यह अशेष जैसा कि उसका पिता कहता था कि वह एक बड़े जमीं-

दार का लड़का है, विवाहित है। उसकी अपनी बहू है और एक चाँद सा सलोना लड़का है। इस समाचार को पढ़कर आपकी रग-रग में पीड़ा जरूर होने लग गई होगी। आपका विश्वास धर्म-संकट में पड़ गया होगा, पर मैं आपको अक्षरशः सत्य लिख रही हूँ। मैंने उसकी बहू की व्यथा-भरी कथा सुनी। वह अबला जिसके अन्तर में विद्रोह की जगह अपने कपटी पति के प्रति महान् श्रद्धा व भक्ति है, निरन्तर आँसू बहा कर मुझसे एक ही प्रार्थना कर रही थी कि आप उन्हें समझा दें कि वे मुझे अपने पास रख लें।...मैं उनकी गालियाँ, डंडे, झिड़कियाँ, दुत्कारें सब सहने को तैयार हूँ पर उनका वियोग और यह अफवाहें कि वे दूसरी शादी कर रहे हैं या रखैल रखते हैं, कदापि सहने को तैयार नहीं हूँ। मुझे उसकी बहू पर दया और क्रोध दोनों आया।... क्यों यह पत्नी अपने बर्बर पति के इस अत्याचार को सहन करती है ? सिर्फ इसलिये कि वह यह समझती है कि उसके शरीर पर केवल उसके पति का अधिकार है। ...उस नारी ने मुझे यह भी कहा कि उसके सास-ससुर दूसरों के सामने बहुत ही सुन्दर व्यवहार-बर्ताव मुझसे रखते हैं और घर में मुझे दाने-दाने के लिये तरसना पड़ता है। ...उसने एक बहुत ही भयानक और पीडाजनक बात बताई कि जब उसका पति अशेष घर आता है तो उससे एक शब्द भी नहीं बोलता परन्तु रात को उसे दरिन्दे की भाँति नोचता जरूर है। मनुष्य की हृदय हीनता और उसकी क्रूरता का यह कितना अमानुषित चित्र हो सकता है।

मनुष्य के दो रूप हो सकते हैं—बाह्य नहीं—आन्तरिक। यह आन्तरिक रूप आप और मैं अच्छी तरह देख-समझ नहीं सकतीं अन्यथा क्या हम उस व्यक्ति को प्रेम का प्रतिरूप मान सकती हैं जिसकी आत्मा गन्दी नाली की सड़ाँध सी दुर्गन्ध दे रही है। जो इतनी निर्दयी है जितना कसाई।

बहिन ! इस अशेष ने मेरे परिवार को उस किनारे पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ निराशा और भूख है। यदि मैं अपने श्रम का उचित

मूल्य भी लेती रहती तो मुझे तुरन्त इस संकट का सामना न करना पड़ता लेकिन मैंने उसके प्यार पर एतबार किया, उसकी आदर्शवादी बातों में आकर मैं जरा भी व्यापारिक माडल-गर्ल नहीं बनी और आज ऐसी विकट परिस्थिति में आ गई हूँ जहाँ मुझे अपने बारे में एक बहुत ही महँगा सौदा शीघ्र ही करना पड़ रहा है।

यह तो अच्छा हुआ कि ईश्वर हमारे पक्ष में रहा वर्ना आपके हाथ पीले होकर पशु के कठोर हाथों में चले जाते। आप उसकी दुल्हिन बन जातीं जो इन्सान के नाम पर एक कलक है।

अब वह अपने गाँव चला गया है—अपनी बीवी को छोड़ने। ताकि लोग उसे कुँवारा समझें, लड़कियाँ उसे चित्रकार समझ कर उसकी ओर आकर्षित हों, उस पर रीझें और वह अपने मैले रूप को छिपाये सबके साथ कपट करता फिरे।

मैं चाहती हूँ कि उसका भेद विस्फोट कर दिया जाय ताकि वह अपनी आत्म-ग्लानि में मर मिटे। वह इतना जलील हो जाय कि अपना पापी मुँह लेकर यहाँ वापस आये ही नहीं।

शुभ कामनाओं के साथ

अपरिचित—अर्चना

अमृत ने पत्र पढ़ कर तुरन्त आवेश में एक आक्रोश भरा पत्र अशोष को लिखा जिसकी भाषा बहुत कम संयत थी।

उसने उस पत्र को उसी समय डाक में छोड़ दिया।

ठीक तीन बजे वह आइस्टिन के घर पहुँची। आइस्टिन लेटी-लेटी स्वर्गीय प्रेमचन्द का उपन्यास 'गोदान' पढ़ रही थी। अमृत को देखकर वह खुशी से तपाक से कह उठी—"तुम आज देरी से क्यों आई ?"

"क्यों ?"—अमृत अपने चेहरे की गम्भीरता को मिटा नहीं सकी।

"तुम्हें मैं खुश खबरी सुनाना चाहती हूँ। नर्स-जीवन पर मेरा जो लेख था, वह 'स्टेट्समैन' दैनिक में छप गया है।"

"बधाई।"

"अमृत ! तुम्हारे शब्दों में वह प्रसन्नता नहीं, जो होनी चाहिये।... देखो अमृत ! जो तुम्हें घुल-घुलकर ही अपने जीवन को तबाह करना है, तो शौक से कर लो"—उसने नाराजगी से आँखें दूसरी ओर घुमा लीं।

"ऐसी कोई बात तो नहीं है आइस्टिन, बस न मिलने के कारण पैदल आई हूँ न जरा सोचो तो कहाँ सियालदाह कहाँ जोड़ा गिर्जा।"

"क्यों ट्राम बन्द है क्या ?"

"नहीं जाम हो गई है।"

"चाय तो पियोगी ही ?"—कह कर उसने स्टोव जलाया। उस पर उबलने के लिये पानी रख कर वह पुनः अमृत के पास आई—"मैंने अपनी एक मित्र लेडी-डाक्टर से तुम्हारे बारे में बात-चीत की थी। उसने कहा कि मैं उसके होठ के कटेपन को ठीक कर दूंगी, उसे एक बार मेरे पास लाओ तो सही, आज शाम को चलना है।"

"मैं जरूर चलूंगी।"—उसने बात बदली।—"आइस्टिन ! मुझे नौकरी की जरूरत है। नौकरी बिना जीवन-निर्वाह कैसे संभव नहीं।"

"तो तुम इसीलिये उदास थी, अमृत ! नौकरी बड़ी मुश्किल से मिलती है, विशेषकर तुम जैसी के लिये। ये बड़े-बड़े दफ्तर वाले लड़की को नौकर रखने से पहले उससे एक भेंट करते हैं, उस भेंट में वे उसके गुण और योग्यता को कम, उसके रूप और नखरे को अधिक देखते हैं।"

आइस्टिन के नयनों में करुणा उभर आई। उस का स्वर शान्त हो गया—"फिर भी प्रयास करूँगी।"

"जब आशा ही नहीं तो प्रयास करने की क्या जरूरत है ?"

"एकदम निराश हो जाना भी तो मनुष्य का धर्म नहीं है।"

एकायक अमृत का ध्यान आइस्टिन के उन कपड़ों की ओर गया जिन्हें वह हस्पताल जाते पहनती थी।

उस ने प्रसन्नता से आँखों को नचाते हुए जल्दी से कहा—"आइस्टिन ! क्या मैं नर्स नहीं बन सकती।"

"क्यों नहीं बन सकती, तुम तो खूब आसानी से नर्स बन सकती

हों, नर्स बन कर तुम अपने जीवन को एक साँचे में ढाल सकती हो।"

"फिर बात करो न।"

"तो तुम एक अर्जी 'पब्लिक सर्विस कमीशन' के नाम पर 'नर्स' पोस्ट के लिए भेज दो, शेष सब कार्य मैं ठीक कर लूँगी।"

"अर्जी तुम्हीं लिख दो मैं दस्तखत कर दूँगी।"—इस के बाद उन दोनों ने चाय पी। चाय पी कर वे ताश की बाजी 'स्वीप' खेलने लगीं।

शाम को लगभग छः बजे वे दोनों घूमने चलीं। उन्होंने मैदान में घण्टों बैठ कर इधर-उधर की बातें की।

जब आठ बजे तब अमृत ने उस से हँसते हुए बिदा ली। तत्काल वह अत्यन्त मग्न जान पड़ रही थी। ग्रांड होटल के आगे उसने श्रवण कुमार को देखा।

यह श्रमणकुमार कालेज में उस पीछे पड़ा हुआ था। कोई बात न होते हुए भी वह कुछ बात बना कर अमृत से बोलने हेतु उस के पास व्यर्थ ही आया जाया करता था।

अमत और श्रवण की आँखें टकरा गई। श्रवण किसी मित्र से बातचीत कर रहा था। उसे देखकर भी उसने ऐसे भाव का प्रदर्शन किया जैसे उ। ने अमृत को देखा ही नहीं है। अमृत वहाँ न जाने क्यों खड़ी हो गई, वह खुद नहीं समझ सकी।

उसे खड़ी देख कर श्रवण उस के पास आया—"हलो, अमृत! तुम्हारे साथ हुए एक्सीडेंट का मुझे हार्दिक दुःख है।···पर तुम ने पढ़ना क्यों बन्द कर दिया, तबियत तो मजे में है? अच्छा फिर कभी मिलूँगा, ···एक मित्र बाहर से आया हुआ है जरूरी बातें करनी है, उम्मीद है कि तुम बुरा नहीं मानोगी, अच्छा, नमस्ते।"

श्रवण इस रफ्तार से कहे जा रहा था कि अमृत को बोलने का मौका ही नहीं मिला। तब अमृत की आत्मा ने जाना—"सब उस से किनारा करते हैं, घृणा करते हैं, उसे भी इन सब से घृणा करनी चाहिए।"—और उस का अन्तर रोदन कर उठा।

२०

***

समय की गति शाश्वत है।

दिन बीते, रातें गईं, महीने भी हार कर चले गये और साल भी उस गति का सामना न कर सके।

इन विगत सालों में जीवन ने बहुत ही आश्चर्यजनक परिवर्तन देखे। अमृत का होठ का इलाज हो गया पर वह पूर्ववत नहीं बन सका, कुछ उठा सा रह गया। उसके गाल का क्रॉस पहले जैसा ही था। आजकल वह हस्पताल के क्वार्टर में रहती थी—वह नर्स थी।

अधिकतर उसने अपने आपको इतना एकाकी बना लिया था कि वह बहुत ही कम दूसरों से मिलती-जुलती थी। अशेष ने कलकत्ता छोड़ दिया था, यह उसे अर्चना ने हस्पताल में आकर बताया था, वह भी थोड़े दिन पहले। वह अर्चना से मिल कर बहुत ही खुश हुई थी। अर्चना ने प्यार से उसका हाथ चूम कर अपने पति से परिचय कराया—"यह हैं मेरे पति भँवर लाल, सेठ हुक्मचन्द के बेटे। इन्होंने मुझ से अन्तर्प्रान्तीय विवाह किया है।"···दरअसल में वह भँवरलाल की रखैल थी, भँवरलाल ने उसे एक पत्नी की तरह रखा था। पालतू जानवर की तरह उसे पाल रखा था, उसका अकेले का उस पर अधिकार था। 'और आप हैं मेरी हमदर्द अमृत कुमारी, बहुत भली और अच्छी मित्र हैं।"

अमृत ने उसके पेट का मुआयना कर के उसे बताया कि उसके बच्चा होने वाला है—बधाई अर्चना देवी।

अर्चना शर्म से लाल हो उठी।

भँवर का सीना गर्व से फूल उठा।

उसके चले जाने के बाद उसने कुछ अर्चना के सुखी-जीवन के बारे में सोचना चाहा पर तभी उसकी बुलाहट 'आपरेशन-रूम' से आई, अतः वह तुरन्त उसकी ओर चली गई।

बन्द आपरेशन-रूम से आवाज आ रही थी—

"नाइफ"

"आर्टरी फारशेप"

"टाल क्लिप्स"

"रीट्रेक्टर"

लगभग एक घण्टे के बाद रोगी के पट्टियाँ बाँध कर वह बाहर निकली। उसकी ड्यूटी खत्म हो चुकी थी। वह वहां से सीधी अपने क्वार्टर में आकर बिस्तरे पर भारी मन लिए लेट गई।

'अर्चना माँ बनने वाली है।' उसका मन अर्चना के जीवन पर केन्द्रित हो गया— वह कितनी खुश थी। उसके चेहरे पर गृहलक्ष्मी की श्री विराज रही थी। अमृत ने लम्बी साँस के साथ करवट ली। यह वही अर्चना है जिसकी हर घड़ी दुख-दर्द से भरी हुई थी और आज उसने एक ऐसे युवक से विवाह किया है जिसने समाज और धर्म की परवाह किये बिना ही एक माडल-गर्ल को अपना कर क्रान्तिकारी विचारों का परिचय दिया है।

उसने भी सोचा कि क्यों नहीं वह स्वयं भी कम्पाउन्डर आशुतोष से विवाह कर लेती। वह उससे कितनी आत्मीयता रखता है, उसके सुख-दुख का संगी सा है। उसमें उन निकम्मे डाक्टरों तथा कम्पाउन्डरों की बुराइयाँ नहीं हैं जो नर्स को अपने पांव की जूती समझते हैं, उनके अरमानों से खेलते हैं, यदि वह आनाकानी करती हैं तो कोई भी कारण ढूँढकर उसे नौकरी से अलग कराने की धमकी देते हैं।

तब उसकी आँखों के समक्ष भारतीय नर्स का दयनीय जीवन नंगा होकर नाच उठा। उनकी हालत कितनी करुणाजनक है, यह उसने अनुभव करके देखा है। उसे याद आया मारग्रेट का चीत्कार करता

जीवन, उसकी तड़पती हुई आत्मा, उसके सिसकते हुए प्राण।

मारग्रेट ने कितनी वेदना से कहा था—"मेरे इस सुन्दर शरीर का हर परोपकारी कहे जाने वाले सेवा-व्रती डाक्टरों ने इस तरह उपभोग किया जिस तरह कसाई कटी गाय की खाल उधेड़ताहै। नारी को नागिन समझने वाली इस पुरुष जाति से यदि पूछा जाय कि जब तुम अपनी दानवी-पिपासा से पीड़ित होकर नारी के अंग के अस्तित्व को अपने में एकाकार करना चाहते हो, तब तुम्हारे इस तरह के बोल क्या पानी के मोल नहीं बिकेंगे ?" जब मारग्रेट कह रही थी, उस समय उसके शब्द-शब्द में आग सी जलती थी। उसका शरीर काँप रहा था— "यह पाश्चात्य सभ्यता की हामी बुद्धि-जीवी पुरुष जाति उन साँपों से अच्छी नहीं जिन्हें दूध पिला-पिला कर बड़ा किया जाता है और वक्त आने पर वे दूध पिलाने वालों को ही डस लेते हैं।'

उसे सविता चटर्जी के सन्तप्त हृदय के उदगारों ने बहुत ही प्रभावित किया—"मैं अपना जीवन निर्जीव समझती हूँ क्योंकि मेरी आत्मा और अभिलाषा इतनी बार खिलौना बन चुकी है कि अब उसमें तनिक भी स्वाभिमान की मात्रा नहीं रही। नर्स बनाम नारी, एक उपहास है, एक झूठ है, नर्स बनाम विवशता सत्य है।

फलोरा के बेहया जीवन ने उसके हृदय में बहुत बड़ी ठेस लगाई थी। उसने आकर एक दिन कहा था—"अमृत ! सेठ चम्पालाल जी के बेटे ने तुम्हें अपने घर बुलाया है।'

'क्यों ?" अमृत ने पूछा।

'कुछ भेंट देना चाहते हैं तुम्हें।"

"किस लिये ?"

"बड़े आदमी हैं, और बड़े आदमियों की बातें बड़ी होती हैं।"

तब अमृत ने जलते हुए तवे की तरह गर्म होकर कहा था— "उस सेठ के बच्चे को कह देना हर नारी इतनी आसानी से नहीं खरीदी जा सकती है जितनी तुम।"

फ्लोरा यह सुनकर मुँह सिकोड़ती हुई चली गई—'आदमी बहुत लायक है, मौज करोगी।"

"ऐसी ही नर्सें नर्स जीवन के लिये अभिशाप हैं, उसने मन ही मन सोचा। इसके बाद उसने फ्लोरा के बारे में ऐसी भद्दी-भद्दी और अश्लील बातें सुनी कि उसका दिल कराह उठा। उसने सुना कि यह फ्लोरा एक साड़ी के बदले अपना शरीर खुशी से बेंच देती है, इसके एक नहीं, कितने ही यार है,...रंडी से कम नहीं है। उसने यह भी पता किया कि क्या डाक्टर लोग इसके विरुद्ध कोई ठोस कदम नहीं उठाते, तो उसे उत्तर मिला था कि ये डाक्टर लोग समय समय-उसके घर आते जाते हैं—चोर चोर मौसेरे भाई।'

इन्हीं सब बातों ने अमृत के एकान्तवास को विक्षुब्ध रखा। हाँ, उसे आशुतोष इन सभी बुराइयों से दूर का व्यक्ति जान पड़ा। यही कारण था कि अमृत की यदि कोई जरा भी सहानुभूति प्राप्त कर सका था तो वह था आशुतोष।

आशुतोष हस्पताल के भ्रष्टाचार से एकदम बचा हुआ था। उसके दिल को उस समय बड़ी चोट लगती थी जब वह किसी डाक्टर को किसी बड़े सेठ से गैर कानूनी ढंग से पैसा ऐंठते देखता, जब वह किसी नर्स या कम्पाउण्डर को नकली इन्जेक्सन व्यवहार करते पाता। जब वह उन्हें चोरी-चोरी बेंचते नजर अन्दाज करता, तब उसे महान सन्ताप होता था। हस्पताल के सारे व्यक्ति उसे 'फरिश्ता' कहते थे। पर उसने कभी भी किसी का विरोध नहीं किया क्योंकि वह छिपे रूप से पत्रकारों को ये समाचार बराबर पहुँचाया करता था ताकि उसकी अपनी राष्ट्रीय सरकार यह भली-भाँति जानती रहे कि देश के जिम्मेदार व्यक्तियों की इमानदारी दिन प्रति दिन दिमागी योजनाओं की भाँति तरक्की कर रही है।

अमृत का अन्तर इस बात से परिचित था कि आशुतोष उससे प्यार करता है, उसे चाहता है पर उसने कभी भी उसके समक्ष ऐसे भाव प्रकट

नहीं किये, वह कई बार इरादा कर के भी आया था पर वह सफल नहीं हो सका। तब अमृत खूब हँसी थी,...खूब हँसी थी। उस समय आशुतोष उस बालक की तरह मुद्रा बना कर बैठ गया था जो किसी की बात का तात्पर्य न समझा हो।

और जब कभी वह गंभीरता से आशुतोष के बारे में विचारती तो उसे उस पर दया आती थी।

अमृत जानती थी कि आशुतोष का उसके प्रति आकर्षण महज एक मजबूरी है। अपनी हैसियत को देखते हुए वह जानता है कि उसे कोई अच्छी युवती नहीं मिल सकती। सामाजिक परम्परायें तथा आर्थिक मजबूरी उसके सामने थी। वह जिस समाज का था, उसमें लड़कियों का अभाव था लड़की को खरीदना पड़ता था। ऐसी हालत में यदि अमृत उसे प्राप्त हो सकती तो उसके लिए लाभ ही था, क्योंकि उसका नारीत्व और नर्सों की तरह झूठा नहींथा—संयमित और नियन्त्रित था।...लेकिन अमृत आइस्टिन की मित्र थी, उस आइस्टिन की जिसकी माँ को उसके पिता ने दुःख दिया था। आइस्टिन की तरह वह हर पुरुष को अपना मित्र बना सकती थी, पर पत्नी बन कर रोटी और कपड़े के बदले जानवर की तरह खूंटी नहीं बँध सकती थी। उसे विश्वास हो गया था कि उसके चेहरे की विकृति यौवन के उद्दाम और प्रकाश में कुछ छिप गई है और कुछ छिपती जा रही है।

तब उसे याद आई वह घटना जब वह 'मिड वाइफ' की पोस्ट पर प्रसूति-गृह में थी।

आइस्टिन की हालत दिन प्रतिदिन गिरती जा रही थी, उसे उन्माद सा हो रहा था।

डाक्टरों का कहना था—"यह उसके सेक्स की अतृप्ति की प्रतिक्रिया है। बेहतर यही होगा कि अच्छी होने के बाद यह विवाह कर ले पर अच्छी होकर आइस्टिन ने अपने हठ को नहीं छोड़ा। उसने अपना सारा समय अध्ययन और लेखन में लगा दिया। उसकी रचनाओं में उसके

जीवन के अभाव बोलते से जान पड़े। उसका तन दिन-प्रति-दिन क्षीण होता जा रहा था जैसे तेल बिना जलती हुई बत्ती।

आइस्टिन ने अमृत को भी यही सलाह दी थी कि वह शादी न करे, पर आशुतोष उसके विचारों में कभी-कभी हलचल मचा देता था।

उसके विचारों को पुरुष के प्रति आकर्षित होने में अर्चना ने काफी प्रोत्साहित किया पर एक दिन जब अर्चना ने अपने विवाह के सत्य का उद्घाटन किया तो उसने आइस्टिन को सच माना। उसने कहा था—"विवाह के बाद ये पुरुष घोड़ी और औरत के बीच इतना ही फर्क समझते हैं कि एक को चाबुक के जरिये काबू करते हैं और दूसरी को चपत के जरिये, या फिर घूंसों के जरिये।" इसका गहरा समर्थन अर्चना के पत्र ने भी कर दिया था। पत्र पढ़ कर उसकी आँखों में आंसू आ गये थे।

पत्र के ऊपर शेक्सपियर के नारी के प्रति विचार लिखे थे—'स्त्रियों के आँसुओं में यदि शक्ति होती तो हर आँसू से एक-एक साँप पैदा होता।'

इस हलचलमय जीवन से अमृत अपने मन की शान्ति खो बैठी थी। उसकी भाव-भंगिमा चितातुर रहती थी। एक ओर नारी की भयानक परिभाषा में और दूसरी ओर नारी नर के बिना अधूरी के नारे—क्या पुरुषों का यह प्रपंच नहीं?

तब उसने एक दिन आशुतोष को बुला कर समझा दिया था—"आशु! तुम जिस बात की मुझसे उम्मीद रखते हो, वह तुम्हारा भ्रम है। तुम मित्रता को प्रेम समझ कर कल मुझसे अपने लिए समाजिक अधिकारों की माँग करो, उसके पहले ही मैं तुम्हें सावधान कर देती हूँ।"

आशु ने कहा था—"तुम्हारी मर्जी, मैं तुमसे ऐसी माँग नहीं करता पर तुम्हारे इस कथन से मुझे मार्मिक क्लेश हुआ है।"

आशु ने अधिक कुछ नहीं कहा पर उस दिन के बाद आशु के जीवन में नई विरक्ति देखने को मिली। इस नई विरक्ति, नई उदासी ने कई बार अमृत के इरादों को झकझोर दिया था।

लेकिन हाल ही में एक दैनिक पत्र की खबर ने आशु की इस दीनता के प्रति अमृत को एकदम कठोर बना दिया।

खबर थी—"एक युवती ने फाँसी लगा कर आत्महत्या कर ली—शीर्षक के नीचे लिखा था—"कलकत्ता, ज्ञात हुआ है कि बड़ा बाजार में एक युवती ने कल शाम अपने छत से रस्सी लटका कर आत्महत्या कर ली। इस रहस्य पर प्रकाश डालते हुए पड़ौसियों ने बताया है कि पति और पत्नी में हार्दिक प्रेम था और उनका प्रेम-विवाह भी हुआ था। जानकार सूत्रों का कहना था कि इधर पति का रवैया कुछ बदला हुआ देखकर पत्नी सतर्क हुई। उसने एक दिन अपने पति को अपनी सहेली के साथ कुकर्म करते देख लिया, उस दिन वह बाजार से जल्दी लौट आई थी। उसने एक भारतीय नारी की भाँति अपने पति को कई बार इस बुरे रास्ते पर उसके चलने से रोका। इस पर पति ने उसके साथ दुर्व्य-वहार किया और उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे की भाँति उसे दुश्चरित्रा कहा।···इस पर युवती को गहरी संवेदना हुई। उद्विग्नता की अवस्था में आकर उसने आत्महत्या कर ली। पुलिस मामले की सरगर्मी के साथ छानबीन कर रही है।"

अमृत ने तब निश्चय किया कि इस प्रकार का व्यवहार असन्तुष्टि को जन्म देगा। नाश की ओर उन्मुख करेगा। क्योंकि यह मानवी पर नंगा जुल्म है। मनुष्य की बढ़ती हविश किस परिणाम से टकरायेगी ? शायद सर्वनाश से।

अमृत ने अपने चारों ओर विषाक्त-असन्तुष्टि का साम्राज्य पाया। उसका दम घुटने लगा—हर आदमी अपनी परिस्थिति से घोर असन्तुष्ट है। उसने अपने आप समझा—क्या डाक्टर, क्या कम्पाउण्डर, क्या नर्स, क्या चपरासी, क्या मेहतर, क्या रोगी ? सब के सब एक पीड़ित की तरह असन्तोष में जल रहे हैं।

उसने अपने अस्पताल के बाहर दूर बहुत दूर नजर दौड़ाई तो उसने देखा कि, संसार के हर व्यक्ति को आज अपनी परिस्थिति के

प्रति घोर विद्रोह है ।

तब उसने तय किया कि या तो वह अवकास ग्रहण करेगी या वह इस असन्तोष भरे नगर से दूर होकर कहीं पहाड़ी हस्पताल में चली जायेगी। सेनिटोरियम चली जायेगी जहाँ यहाँ के गन्दे वातावरण की बहुत कम बू होगी ।

उसने दोनों आशयों की अर्जियाँ पी० एम० ओ० के पास पेश कर दी ।

२२

***

आज खुशी का दिन था—क्योंकि आइस्टिन ने इस प्रसन्नता में कि वह 'सिस्टर' से 'मैट्रन' के पद पर प्रतिष्ठित हुई है, उसने दावत दी थी ।

पर आइस्टिन के लिए यह दुःख का दिन भी था क्योंकि उससे उसकी प्यारी सहेली अमृत दूर जा रही थी—किसी पहाड़ी सैनिटोरियम में ।

विरह-मिलन की ये घड़ियाँ बहुत ही विचित्र थीं ।

आँसू और हँसी का अद्‌भुत समाँ ।

आलिंगन में भरपूर लपेट कर अमृत का चुम्बन लेते हुए आइस्टिन ने माँ की तरह कहा—"तुम नर्स हो, नर्स वह नारी है जो मरते हुए रोगियों को नया जीवन देती है। उसके होठों पर वह अप्रतिभ मुस्कान खिला देती है। इसलिये उसका महत्व उन तमाम कल्याणकारी दार्शनिकों से विशेष है जो प्रत्येक समस्या पर जटिल वाद-विवाद करके हजारों मस्तिष्कों को थका दिया करते हैं ।

अमृत ने भी श्रद्धा के साथ आइस्टिन के हाथ को चूमा। उसकी आँखों में आँसू थे और दृष्टि में ग्रहण-शक्ति। अमृत बिदा हुई ।

२२

*

पर्वत की गोद में अमृत ने अपने आपको अधिक स्वस्थ पाया। उसे वहाँ के वातावरण में शान्ति तो प्रतीत हुई पर सैनटोरियम की आन्तरिक व्यवस्था और भ्रष्टाचार से उसे आत्म-ग्लानि बड़ी हुई जिससे व्यथित हो उसने आइस्टिन को एक पत्र लिखा।

उसने आइस्टिन को लिखे अपने उस खत को काफी ध्यान से पुनः पढ़ा—

बहन ! यहाँ यादवपुर टी० बी० हस्पताल में न्याय नाम की वस्तु का निशान तक नहीं है। यहाँ गरीब नारियों के सुहाग रेत के घर से उजड़ते हैं।

एक क्षय रोग पीड़ित व्यक्ति अस्पताल के द्वार पर इसी अन्याय से मर गया कि इसकी दवा दारू नहीं हुई। उसकी मूर्ख बीवी ने तीन घंटे तक उसकी लाश को भी अपने सीने से चिपकाये रखा। वह हठी बालिका की तरह बिलख-बिलख कर कह रही थी कि यह मरा नहीं है, यह बीमार है, इसे खाँसी आती है, इसकी खाँसी में खून गिरता है, मैं इसे नहीं दूँगी, यह जिन्दा है, जिन्दा है।...आइस्टीन ! मैं वहाँ अधिक नहीं ठहर सकी। मनुष्य के जीवन के प्रति इतना बड़ा खिलवाड़ मेरी सहन शक्ति के बाहर की बात थी।

गरीबों को उस हस्पताल में 'सीट' ही नहीं मिलती, सिर्फ दो चार इसलिये दे दी जाती है कि पाप नंगा न हो।...वैसे डाक्टरों व इंचार्जों की जेब जो जितनी अधिक गर्म कर सकता है, उसे उतनी ही ठंडी सीट मिल जाती है। हाल ही में एक पत्रवाले की पत्नी को इसलिये सीट

मिल गई है, क्योंकि उसने तमाम हस्पताल के कर्णधारों की प्रशंसा अपने पत्र में फोटो के साथ प्रकाशित की थी।

इन बातों को सुनकर क्या तुम विश्वास कर सकती हो कि इस भूमि पर 'कर्ण' जैसे दानवीर 'बलि' से त्यागी और 'हरिश्चन्द्र' से सत्यवादी हुए हैं ? मैं विश्वास नहीं करती। वैसे सुनती तो यही हूँ कि हैं हम उन्हीं की ही सन्तान।

अमृत अपना पत्र पढ़ती ही जा रही थी—देश के अधिकारी गणों को अपने भविष्य पर बहुत कम आस्था है। वे सत्ता पा जाने का सीधा अर्थ यह लगाते हैं कि उन्हें भगवान ने सुखी बनने का शुभअवसर दिया है इसलिये वे पद का अनुचित तरीके से लाभ उठाने का प्रयास करते हैं।...आइस्टिन ! यह मनुष्य के पतन की चरम सीमा नहीं, पूँजीवाद के पतन की चरम सीमा है। अब इसकी समाप्ति पर ही मनुष्य के सुखों का प्रारम्भ है।

पत्र समाप्त करते हुए उसने लिखा था—आज एक नया रोगी आया है। उसकी सिफारिश किसी मिनिस्टर ने की है। मिनिस्टर का कहना है कि यह उपेक्षित स्वातन्त्र्य-संग्राम का सैनिक है, क्रान्तिकारी कवि है। इसकी कविताओं में देश-प्रेम राष्ट्रीय-भावना महान नेताओं से भी अधिक है। से भी अधिक है। इसका उपचार सुव्यवस्था से होना चाहिये। मेरी ड्यूटी उसी के पास है। कल मैं उसे देखूँगी।

तुम्हारी

अमृत

पत्र बन्द करके उसने डाक में छोड़ दिया था।

नियत समय पर अमृत ड्यूटी पर तैनात हुई। उसने रोगी को देखा, उसकी उम्र ३०-३५ के लगभग होगी। चेहरे पर घनी दाढ़ी और मूँछें थीं। सिर के बाल भी घास की तरह रूखे सूखे और बढ़े हुए थे। चेहरे की हड्डियाँ आसानी से गिनी भी जा सकती।

मनुष्य के रूप में वह पूरा नर-कंकाल था।

वह अर्द्ध मूर्छित सा था।

डाक्टर ने उसकी सहायता से उसे 'स्टेप्टोमाइसन' का इन्जेक्शन दिया और उसे 'आइसोनैक्स टैबलेट्स' समय समय पर देने को कह कर चला गया।

उसे कब चेतना आई, अमृत ने यह अच्छी तरह नहीं जाना। लेकिन तीसरे दिन उस रोगी ने क्षीण स्वर में पुकारा—"अमृत !"

अमृत चौंक उठी। यह पहला रोगी था जिसने उसे 'सिस्टर' न कह कर नाम से पुकारा। उसने घूम कर देखा—रोगी की आँखों में तड़प थी।

"जरा इधर तो आओ।"

अमृत उसके पास गई। उसे महसूस हुआ कि रोगी की आवाज कुछ पहचानी-पहचानी सी है।

"मुझे पानी दो।"

अमृत ने पानी दिया।

पानी पीकर जैसे ही रोगी कुछ बोलने के लिए उद्यत हुआ, वैसे ही अमृत ने उसे टोक दिया—'आपको चुप रहना चाहिये, बोलना आपकी सेहत के लिये खतरनाक है।'

रोगी ने आँखें बन्द कर लीं। उसका मन कविता में सोच रहा था— "यह तो वही नारी है जिसे मुझे प्रकाशपुंज कहना चाहिये, सूरज कहना चाहिये। जिसकी स्मृति जब मैं किसी युवती के बारे में सोचता हूँ, उस समय मेरे मन में मधुर भावना की तरह उत्पन्न हो जाती है।

"इस चंचल सहगामिनी के साथ मैंने यौवन से भाराकान्त पूरे चाँद की कई रातें बिताई हैं। मेरे स्पर्श से उसके रोम रोम में दामिनी सी सिहरन दौड़ जाती थी।"

'ऐ मेरे चाँद ! वर्षों के पश्चात तू मेरे मन-मन्दिर के समीप इसलिये आया है कि तू अपनी पुण्य-ज्योति से मेरे तन के समस्त दुखों का निवारण कर दे।"

दिन बीते ।

तब वह निशीत-पहर तक अमृत के बारे में सोचता रहा ।

अमृत के समक्ष वह रोगी प्रायः मौन रहता था । अमृत ने उससे कई बार प्रार्थना की थी—"श्रीमान जी ! आपको प्रसन्न रहना चाहिये, आपको आवश्यकता अनुसार हँसना-बोलना भी चाहिये, मैंने एक बार चुप रहने के लिए कह दिया, इसका तात्पर्य यह तो नहीं हुआ कि आप बिल्कुल ही मौन धारण कर लें ।"

रोगी ने गंभीरता से कहा—"मनुष्य बड़ा विचित्र जीव है ! कभी कभी वह दूसरों से छल करने के जतन में अपने छल से खुद ही छला जाता है ।...शायद यह बात मेरे पर भी लागू हो सकती है ।"

उसकी इस निराश-वाणी पर अमृत को आस्टिन के शब्द स्मरण हो उठे 'तुम नर्स हो, नर्स वह नारी है जो मरते हुए रोगियों को नया जीवन देती है, उनके होंठो पर अप्रतिभ मुस्कान खिला देती है ।"

अमृत ने विह्वल होकर रोगो का हाल अपने हाथ में ले लिया—"तुम ऐसा सोचते क्यों हो ? तुम्हारी सेहत तो दिन-प्रतिदिन अच्छी होती जा रही है ।...तुम्हें ऐसी कौन सी वेदना है ?"

"जिसकी मृत्यु निश्चित होती है उसे धैर्य देना बहुत ही बड़ा धोखा है । हाँ, जब तक साँस है तब तक जीने की आश है ।"

"तुम निराशवादी हो ।...मैं कहती हूँ, तुम्हारी रिपोर्ट बताती है कि तुम अच्छे हो रहे हो ।"

तब रोगी ने अमृत की ओर बड़ी तेज निगाह से घूरा । घूरते-घूरते उसकी आँखें आर्द्र हो उठीं ।

उसने प्यार से कहा—

"देखो अमृत ! तुम डाक्टर को यह मत कहना कि मैं अपनी मृत्यु के कटु-सत्य को जान गया हूँ, तुम्हें मेरी सौगन्ध है ।"—रोगी की आँखों से आँसू टपक पड़े । अमृत के नयन भी नम हो उठे—"बेचारा ।"

तीन माह और बीत गये ।

इन दिनों में रोगी की वेदना उतनी ही तेजी से बढ़ी जितनी तेजी से उन दोनों का अपनापन।

पर्वत की वह रात चाँद की जवान रात थी।

दूध सी चाँदनी पर्वतों और पेड़ों पर छिटक रही थी। खिड़की की राह बिखरी चाँदनी में पथिक कविता गुनगुना रहा था।

मैं तुम्हारे साथ साँसें ले रहा हूँ।
बाहुबल है क्रूर जल है,
दूर प्राची कूल तल है।
मैं तुम्हारे साथ जीवन ले रहा हूँ !!
एक तन है एक मन है,
एक ही आशा सुमन है।
मैं तुम्हारे साथ सौरभ दे रहा हूँ !!
एक पथ है एक रथ है,
आदि इति है, अन्त अथ है।
मैं तुम्हारे साथ पगध्वनि दे रहा हूँ !!
आग बरसे, गाज विलसे
क्रन्दनों का सिंधु हुलसे,
मैं तुम्हारे साथ मंगल से रहा हूँ !! (कवि केदार)

ठीक पीछे बजती हल्की ताली ने रोगी को चौंका दिया। हठात् उसने घूम कर देखा—अमृत थी। अमृत के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखायें नाच रही थीं।

'बहुत सुन्दर।"

"क्या ?—तपाक से रोगी ने पूछा।

"कविता।"

"...या मैं !"

"तुम भी तो फूलते जा रहे हो।" अमृत के स्वर में उपहास था।

"नहीं बुझते दीपक का तरह एक बार जोर से भभक रहा हूँ।"

"एक बात तो बताओ, मुझे देखकर तुम इतने निराश क्यों हो जाते हो यह मैं जानना चाहती हूँ। थोड़ी देर पहले तुम कितने प्रसन्न थे जैसे जीवन तुम्हारी धमनियों और शिराओं में रक्त बन कर संचारित हो रहा है।"

रोगी को विश्वास हो गया था कि अमृत उसकी पीड़ा से वास्तव में पीड़ित है। उससे थोड़ा सा आत्मिक लगाव भी हो गया है। इसलिए वह और उदास स्वर में बोला—"तुम्हें देख कर मेरे जीवन की अधूरी अभिलाषायें और अतृप्त इच्छायें तकलीफ देने लगती हैं।"

"मुझे बताओ न ?

"उसे पूरा करने के लिए हमारे और तुम्हारे बीच बहुत गहरे संबंध और विश्वास की जरूरत है। अमृत ! तुम तो यह भली-भाँति जानती हो कि मैं अब थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ, मरने के पहले मैं अपनी एक अभिलाषा पूरी देखना चाहता हूँ।"

'वह क्या !—उसने तुरन्त बात बदलते हुए कहा—पर तुम मरोगे नहीं।"

'मन को किसी भी तरह साँत्वना दी जा सकती है लेकिन यह सत्य कभी नहीं बदलता और वह वेदना जो इच्छा है, क्या है, वह मैं तभी बता सकता हूँ, जब उसके पूर्ण होने की पूरी-पूरी संभावना हो ?"

अमृत ने चाँद की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखा जैसे वह चाँद के निर्भीक-स्वतन्त्र सौन्दर्य को नेत्रों द्वारा अपने प्राणों में भर रही हो। तब उसने अनुग्रह से कहा—"यदि तुम्हारी इच्छा उचित और सभ्य है है तो तुम्हें किसी प्रकार बन्धन स्वीकार नहीं करना चाहिये।"

'मनुष्य की दुर्बलता का दूसरा नाम ही तो इच्छा है और इच्छा भली-बुरी दोनों हो सकती है, तभी तो कहता हूँ कि मत पूछो मेरे मन के रहस्य को। उसको जानने की कीमत किसी के जीवन और मृत्यु से सम्बन्ध रखती है।" रोगी का स्वर तीखा था। वह लेटकर पुनः अपने बिस्तरे पर सो गया।

अमृत अपनी ड्यूटी समाप्त करके चली गई।

दूसरे दिन रोगी के चेहरे की उदासी और बढ़ गई।

कल जैसी ही जवान रात थी।

अमृत को उस पर दया आ गई—"युवक ! तुम जान-बूझ कर जिन्दगी से खेल रहे हो।" अपनी आँखों में अमृत ने गहरी व्यथा लाकर कहा– "न मालूम मेरे जीवन में और कितनी विचित्रतायें अपना खेल खेलने आयेंगी।...बताओ तुम्हारी कौन सी इच्छा है ?"

"जलकर जो इच्छा पूर्ण करने का बीड़ा उठाता है, उसमें सफलता का अन्देशा हो जाता है। सफलता के लिये श्रद्धा की आवश्यकता है।"

"तुम वास्तव में विचित्र हो।" उसने अपनी तर्जनी का हल्का संकेत रोगी के गाल पर किया—'लो, अब तो बता दोगे।"

"नहीं।"

"न सही।" वह क्रोध से बोली और कमरे के बाहर चली गई।

अपनी ड्यूटी के तीसरी रात उसने अपने अशिष्ट व्यवहार के कारण क्षमा माँगी—"मुझे तुम्हें इस तरह हताश नहीं करना चाहिये, मैं तुम्हें विश्वास के साथ कहती हूँ कि मैं तुम्हारी इच्छा को पूरा करने की भरपूर चेष्टा करूँगी।"

"अमृत !"

'कहो......।"

दोनों की आँखें कुछ देर तक एक दूसरे के आँखों के भाव समझती रहीं। दोनों मानव और मानवी एक दूसरे के अन्तराल में उठते हुए प्यार के तूफान को सही ढंग से समझने का प्रयत्न कर रहे थे।

"तुम्हारी आँखों का विश्वास बोलता है कि तुम मेरी इच्छा पूरी कर दोगी।"

अमृत की आँखें झेंप गईं—"अपनी जान देकर भी मैं तुम्हारे मन की साध पूरी करूँगी।"

रोगी ने हाथ बढ़ा कर वचन माँगा। अमृत ने दिया।

रोगी ने कहा—"मैं एक बच्चा चाहता हूँ।"

"बच्चा...!" अमृत की आँखें फट गईं। उसके कर्ण-कुहरों के चारों ओर एक ही शब्द गूंज उठा—'बच्चा! बच्चा!! बच्चा!!!" और चिहुँक उठी—"क्या कह रहे हो?"

रोगी ने पूर्ववत् शान्ति से कहा—"मैं पहले ही जानता था कि तुम इच्छा सुनकर कपड़ों से बाहर हो जाओगी।...अमृत! यदि तुम मेरी इच्छा को पूरी नहीं करोगी तो...।"

"...तो क्या?" जल्दी से अमृत बोली।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।"—कहकर रोगी ने अपनी गर्दन नीची कर ली।

अमृत ने रोगी की झुकती हुई दृष्टि में भयानक इरादे की झलक देखी। वह काँप उठी।

'तुम कोई भयानक इरादा करने जा रहे हो, तुम्हें मेरी कसम है कि तुम कोई अनुचित कदम उठाओ।"

"विश्वास रखो।"

'मैं तुम्हें कल सोच-समझ कर जवाब दूंगी।" और चली गई।

दूसरे दिन टेबलेट उसके हाथ में देकर अमृत कुर्सी पर ऐसे बैठी, जैसे उसका बदन टूट रहा है। उसकी भारी आँखों से पता चल रहा था कि वह रात भर सोई नहीं है।

कुछ देर दोनों मौन बैठे रहे।

रोगी बुदबुदाया—"मैं जिन्दगी का जलता दिया हूँ।"

अमृत ने धीरे से कहा—"बताओ इस इच्छा के पीछे तुम कौन सी सिद्धि की प्राप्ति में लगे हो?"

रोगी ने अनन्त की ओर निहारा—"मैं इस धरती पर अपना प्रतिरूप देखना चाहता हूँ।......अमृत! मेरे जीवन की क्या-क्या तमन्नायें थीं? मैं चाहता था कि मेरे देश में मानवता सच्चाई और प्रेम तारों की तरह झिलमिलायें। उसमें लालची, भयंकर क्रोधी, भया-

नक द्वेषता रखने वाले प्राणी, कमीने छलिये, कुत्ते की तरह भौंकने वाले बातूनी, थोथे योजना-विहीन निकम्मे और नकली नेता तथा जोंकनुमा पूंजीपति न रहें। उनका अस्तित्व दिन निकलने पर जिस तरह अँधेरा मिट जाता है, उसी तरह स्वतन्त्रता आने पर मिट जाये।... स्वतन्त्रता के पूर्व मैंने सोचा भी था कि वह मिट जायेगा पर मुझे हर बात उल्टी ही नजर आई।

मैंने भी तो आजादी की लड़ाई लड़ी थी। पुलिस के कोड़े मैंने भी खाये थे। बर्फीली चट्टानों पर मुझे भी सुलाया गया था फिर भी मेरी जुबान बन्द नहीं हुई। मैं तो गाता ही रहता था—अमर कवि की अमर वाणी में—

दिल का तूफान न रुका गरीबों का
दिल की ज्वाला न बुझी गुलामों की
देख ली है जिसने माँ की बेड़ियाँ
शक्ति कभी थमी नहीं आवाजों की
ए परदेसी बन्दर तू है गोरा गोरा
यह ज्वार है जनता का हो सावधान
मिट जायेगी सत्ता तेरी हो सावधान

अमृत ने देखा कि कविता कहने के साथ रोगी के चेहरे पर एक अदम्य ज्योति प्रकाशित हो उठी है।

"तब मैं गद्दार कहकर जेल में ठूँस दिया गया। वहाँ मुझे मसोस डालने वाली जिन्दगी मेरी इच्छाओं पर पानी फेरती हुई नजर आती थी। मैं गंदी कोठरी में चूहे की तरह सोया रहता था। मेरी परिस्थिति मेरी हालत के विरुद्ध मुझ में विद्रोह के भाव भरती थी। कभी मेरा अनमनापन और कभी मेरा एकाकीपन मुझे उन खामोश दीवारों को तोड़ने की प्रेरणा देती थी। कभी-कभी मैं अपने बरबाद होते हुए जीवन को जिन्दा रखने की लालसा से जोर-जोर से 'जिन्दगी के गीत' गाया करता था। मेरा जेल का जीवन कितना रोमाँचक था ?

स्वतन्त्रता के पश्चात मैं जेल से मुक्त हुआ। किसी ने मेरी जय के नारे नहीं लगाये। क्या मैं स्वतन्त्रता का सेनानी नहीं था?...था लेकिन...

मैंने देखा–समय बदल चुका है इसलिए आदमी भी बदल गये हैं। फिर भी मैंने यह सोचा, हर सेनानी नेता नहीं बन सकता और न ही हर एक की जयकार होती है।

मैं अपने घर आया।

अमृत! मैंने अपनी माँ के मौत का समाचार जेल में ही पा लिया था। पर जब मैंने सुना कि मेरी माँ की लाश तीन दिन तक इसी मकान में इसलिए पड़ी सड़ती रही कि मेरे समीप वाले सेठ जी ने कह दिया था कि इसका बेटा गद्दार है, गद्दार को सहायता देने वाले की मैं रिपोर्ट कर दूँगा।...मेरी माँ के जिस्म में कीड़े पड़ गए, उसका अंग-अंग सड़ कर बदबू देने लगा। मेरा हर रोम विद्रोह कर उठा।

रोगी का स्वर बहुत तेज हो गया था अतः अमृत ने उसे रोका। अपने पर काबू उसने बहुत मुश्किल से किया—"मेरे मन में उसी विध्वंस भावना ने प्रश्रय पाया जो मुझे काँग्रेस के गर्म दल में प्राप्त हुई थी। मैंने तय किया कि सेठ धर्मानन्द का खून कर दूंगा।...लेकिन वाह रे जमाने की हवा! मैं अपनी फिराक में मस्त था, उधर सेठ जी काँग्रेस के कट्टर भक्त बन गये। मैंने जिला मंत्री को कई खत लिखे पर कोई सुनवाई नहीं हुई, उल्टा सेठ ने एक दिन मेरे ही पाँव गुण्डों द्वारा तुड़वा दिए।

मैं अपने मकान में पड़ा रहा। भूख और ठीक से उपचार न होने से धीरे-धीरे मुझे यह रोग लग गया। अब मैं किसी मित्र-मिनिस्टर की कृपा से यहाँ पटक दिया गया हूँ जहाँ मौत मेरा आकुलता से इन्तजार कर रही है।" बात खत्म करते हुए रोगी की आँखों में आँसू आ गये। उसकी आँखें स्थिर थीं जैसे उनमें सदियों से कम्पन नहीं है।

"लेकिन मेरे हृदय की आग अभी तक ठंडी नहीं हुई है।" रोगी

के स्वर में नाटकीयता आ गई—"मैं चाहता हूँ, मेरे हृदय की पीड़ा और विद्रोह लेकर मेरा अपना प्रतिरूप पैदा हो जो इस बदलती हुई दुनियाँ के नक्शे को देखे, अपने दुश्मन को कुत्ते की तरह तड़पता हुआ देखे और मेरे घर का दीपक बने। अन्तिम बात मेरी माँ की बहुत बड़ी उम्मीद थी।"

अमृत को उस पर दया आ गई थी पर उसका प्रश्न इतना भयानक था कि उसे पूरा करना सहज नहीं था। अतः उसने तर्क से काम लेना आरम्भ किया—"एक बात तो बताओ ?"

"कहो !"

"यह कैसे समझ लिया जाय कि ऐसी हालत में तुम्हारे सहवास से मुझे गर्भ रहेगा ही, और बच्चा भी होगा तो तुम्हारा प्रतिरूप ही।"

"खेत बोने के पहले किसान उसके निराश-परिणाम से अवगत हो जाय तो खेत बोये ही नहीं। हर प्राणी आशा पर जिन्दा रहता है।··· बीज बोने के साथ वह अच्छे फल की उम्मीद करता ही है।···मेरा विश्वास मेरे साथ है, अमृत !···"

जोर की खाँसी हुई युवक रोगी को। अमृत ने उसे चुप रहने के लिये प्रार्थना की। उसने आश्वासन दिया कि वह कल रात अपना निर्णय उसे सुना ही देगी।

दूसरे दिन इन्जेक्सन देते हुए डाक्टर ने रोगी से कहा—"तुम्हारी हालत सुधर रही है।"

रोगी ने आशा की हँसी हँस दी।

अमृत अपने बिस्तर पर पड़ी-पड़ी करवटें बदल रही थी। वह अपने आप से पूछ रही थी कि इस रोगी की कितनी विचित्र माँग है ?

उसकी आँखों में दृढ़ता नाच उठी—"मैं ऐसी शर्त मानने को तैयार नहीं।"

लेकिन अमृत फिर दया से पिघल जाती—"बेचारा, आखिर मैं भी तो नर्स हूँ, नर्स को रोगी की हर इच्छा को पूरी करनी चाहिये बशर्ते

वह परिस्थिति वश उचित हो, फिर वह बेचारा तो मर रहा है । उसके समक्ष कितनी नर्सों की विभिन्न कहानियाँ घूम गईं ।

संघर्षों के बीच उसकी मन की नैया थपेड़े खा रही थी ।

उसने तकिये में अपना मुँह छुपा लिया। उसके अगुप्त नारीत्व ने हौले से कहा—पुरुष संसर्ग···देख तो सही.·· उसकी तृप्ति !

वह सिहर सी गई—अपने मन की इस प्रतिक्रिया पर। तब उसने धीरे-धीरे अनुभव किया कि वह पराजित हो रही है। उसे उसकी इच्छा पूरी करनी ही होगी।···करनी ही होगी ।

रात को सज कर अदृश्य प्रेरणा वश पश्चिम के रास्ते से आना ही पड़ा।

चन्द्र ने देखा कि आज रात चकोरी उन्मत्त है तब वह भी मुस्करा पड़ा। उसने अपनी बाहें फैला दीं तब तारों ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

पथिक के हाथ में आग्नेत का फाउन्टेनपेन था—वह लिखने लगा,

मृत्यु की हर साँस अगले जन्म से घबरा रही है।
स्वप्न में शव को उठाये,
राह में शबनम बिछाये,
डबडबाते आँसुओं की मूक सेना आ रही है।
चौंकते नदिया किनारे,
है कुहासे में सितारे,
रात जाने क्यों सुबह की ओर खींची जा रही है।
मेघ है घिर-घिर रुलाता
काल को फिर-फिर बुलाता,
पर बिचारे काल पर भी एक बदली छा रही है।
चाँद बिना सूना गगन है,
मौन बासन्ती पवन है,
अन्तरिक्षी गूँज सूरज का संदेशा ला रही है।

शाँति को बन्दी बनाने,
रक्त में आगी लगाने,
उठ रही तलवार बारम्बार मुँह की खा रही है ।
स्वर्ण की डाली सजाये,
पंख को अपने कटाये,
पूछता हूँ मैं कि कोयल देश की क्या गा रही है ?
मृत्यु की हर साँस अगले जन्म से घबरा रही है ॥

(वीरेन्द्र मिश्र)

रोगी ने इस कविता को कई बार तरन्नुम से पढ़ा। वह उसे बहुत ही प्रिय लगी। अमृत उसके पीछे आकर खड़ी हो गई थी। जब कविता की धुन बन्द हुई तो सब से पहले उसकी नजर रिपोर्ट पर गई। रिपोर्ट में लिखा था—

"मरीज की हालत दिन-प्रति-दिन सुधर रही है।

"यदि मैं इसकी आशा पूरी कर दूँ तो यह वास्तव में अच्छा हो जायेगा।" अमृत ने यह मन ही मन विचारा। इस विचार से उसके मन में गुदगुदी सी हुई। स्वाभिमान जागा कि वह ऐसा कार्य करने जा रही है जो महान् है, जो इस इन्सान की जिन्दगी बचा सकता है। उसके अहम् को तनिक उत्साह हुआ और उसकी भावनाओं को कुछ उन्माद। उसने उसका पीछे से कन्धा यह सोचते हुए—इसकी वाणी में जीवन और संगीत दोनों हैं—पकड़ लिया। रोगी चौंक उठा।

"आज बड़ी खुशी से गुनगुना रहे हो!"

"हाँ, कुछ ऐसा ही मैं भी सोच रहा हूँ। अपनी हर चीज को अमर बनाने की मेरी बड़ी लालसा है।"

"लालसा के पीछे यदि आदमी के अडिग विचार हैं तो उसे पूरी होनी ही पड़ती है।" अमृत ने नाटकीय अन्दाज से कहा।

"अमृत!" रोगी की आँखें आशा से चमक उठीं।

अमृत ने अपनी निगाहें रोगी पर जमा दीं और कहा—"जब कभी

तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओ, मुझसे विवाह कर लेना, ताकि यदि कहीं मृत्यु की दुर्घटना हो जाय तो उसके बाद मुझे पतिता का जीवन यापन न करना पड़े।" अमृत एकदम भावुक हो उठी।

"मैं मरूँगा नहीं अमृत, अब मैं नहीं मरूँगा, कदापि नहीं मरूँगा।" उसकी आँखों में मशाल सी ज्योति चमक उठी। उसका सीना फूल गया।

"लेकिन मुझे भय है कि बाद में तुम......।"

वह उसके भावों को ताड़ता बोला—"तुम्हारा यह विकृत रूप हमारे प्यार में बाधक नहीं बन सकता। हाँ, धन को मुझसे अधिक महत्व मत देना, यह धन ही मनुष्य के व्यवसान का, इस युग का सब से बड़ा अभिशाप है।" वह अमृत के समीप बैठ गया।

रात ढलती जा रही थी।

चाँद ने चकोरी को अपने आलिंगन में लिया। बादल ने ओट की। शीतल-बयार ने पंखा झला। और......

आकाश में जब भोर का तारा चमकने लगा तब अमृत ने प्यार से सहलाते हुए रोगी से कहा—"अब तो तुम बहुत खुश हो न ?"

रोगी ने निराशा से कहा—"हाँ, अब मैं आराम से मरूँगा अमृत।"

"तुम मरोगे !'—तड़प उठी अमृत। "अब ऐसा मत कहो।"

"मेरी मौत निश्चित है अमृत ! तुमने नर्स हो कर अपने मरीज की इच्छा पूरी की, यह तुम्हारे कर्त्तव्य की महानता है। लेकिन मेरे बच्चे को मरने नहीं दोगी, उसे किसी भी मूल्य पर जीवित रखोगी, यह वचन मुझे और दे दो।"

'मैं तुम्हारे बच्चे को जीवित रखूँगी।" उसने दृढ़ता से कहा।

"अमृत ! एक राज बताऊँ।"

'कौन सा राज ?" चौंक उठी अमृत।

"मैं मंगल हूँ।"—उसने आँखें नीची करके कहा जैसे डर रहा हो।

"मंगल !" अमृत अवाक् रह गई। फिर वह कोमल स्वर में

बोली—"पहले पहल मैंने जब तुम्हारी आवाज सुनी थी तो मुझे भी ऐसा ही महसूस हुआ था। सोचती थी कि ये आँखें और ये आवाज पहचानी-पहचानी सी हैं पर तुम्हारा ख्याल नहीं आ रहा था।"

"अब तो पहचान गई! देखो अमृत अपने देश के सेनानी की हालत। क्या बना डाला मुझे?...अमृत मुझे क्षमा कर दो न,...मैंने इस रहस्य को इसलिए छिपा रखा कि कहीं तुम मुझे पहचान कर अपने को हीन न समझने लगो। तुम्हारे पुराने घाव फिर से हरे होकर तुम्हें दुख न देने ल`।

अमृत की आँखें भर आईं जैसे वह उपेक्षित नारी आज एक पुरुष के सीने में अपने को घुसा कर अपना सारा दर्द मिटाना चाहती है।

मंगल ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"मरने वाले को बचाने के लिये अभी तक कोई विज्ञान पैदा नहीं हुआ, अमृत! जरा अच्छा होते ही मैं तुमसे विवाह कर लूँगा। विश्वास रखो, बिलकुल अच्छा हो जाऊँगा, बिलकुल।...हमारे बच्चा होगा, घर होगा, वह भी बड़ा होकर अपने बाप की तरह अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करेगा। मुझे इन हवेलियों वालों ने हरा दिया है तो क्या हुआ, मेरा बच्चा जरूर जीतेगा, है न।"

अमृत ने आँसू पोंछते हुए कहा—"हाँ मगल, हाँ।"

"देखो भोर हो रहा है। तुम्हारी ड्यूटी खत्म हो रही है।... लेकिन रात को आओ तो अपने विचारों में ऐसी ही लाली लेकर आओ ऐसा ही प्रकाश लेकर आओ, क्योंकि हमें तुम्हें अँधेरा मिटाना है, अँधेरा।"

उसने बहुत श्रद्धा से मंगल के पाँव छुए और अपने घर को चल पड़ी।

कमरे की दीवार के पीछे एक लिफाफा खड़ा पड़ा था। उसने लपक-कर उसे उठाया। लिफाफे पर लगी मोहर को देखने से पता चला कि कलकत्ता से आया यह पत्र दो रोज पहले से ही पड़ा है। उसने लिफाफा

फाड़ा पत्र आइस्टिन का था।

अमृत !

"तुम्हारा पत्र तो ईद का चाँद हो गया है।...मालूम पड़ता है कि किसी रोगी की सेवा में अपने आपको भूला बैठी हो। सच्ची नर्स वही है जो अपने को रोगी के दर्द में मिटा दे। मुझे विश्वास है कि तुम अपने कर्तव्य पर डटी रहोगी।

मैं अपने कमाये हुए पैसों का सदुपयोग करने के लिए विदेश जा रही हूँ, इस बात को तुम मज़ाक मत समझना। मेरा यूरोप भ्रमण का विचार है, बोलो विलायत से तुम्हारे लिए क्या लाऊँ ?

दो दिन पूर्व एक मजेदार घटना घटी। जब मुझ में आकर्षक केवल गुण रहा तब एक साहब विवाह का प्रस्ताव लेकर मेरे सामने आये। प्रस्ताव को सुन कर मैं मन ही मन हँसी और बाद में मैंने ग्रीक की कवियित्री 'सैफो' की तरह कहा— 'यदि मेरे स्तनों में शक्ति होती, यदि मैं सन्तान पैदा कर सकती, तो मैं सहर्ष दूसरे विवाह के लिए तैयार हो जाती है। पर नहीं, अब मेरी त्वचा पर झुरियां पड़ चुकी हैं और मुझ में प्रेम के उद्वेगों को सहन करने की शक्ति नहीं।"

यह सुन कर वह साहब चौंक पड़े—"दूसरा विवाह ?"

'हाँ, मैंने पहला विवाह अपने जीवन संघर्ष से कर लिया है। देखा नहीं आपने, उसने मेरा यौवन, मेरे गालों की लाली, मेरी छाती का दूध सब कुछ हर लिया है।"

वह व्यक्ति विचित्र दृष्टि से देखता रहा और अन्त में यह कह कर चला गया—"तुम विचित्र लड़की हो, अपनी आत्मा का शोषण करती हो।"

मैं उसकी बात पर शायद विचार करती पर अब मुझे विदेश जाना है, इसलिए मैं तमाम चिन्ताओं से मुक्त होना चाहती हूँ। विदेश से पत्र लिखूंगी......हजार चुम्बन—अलविदा।

आइस्टिन

अमृत पत्र रख कर गुसलखाने में गई। गुसलखाने से निकल कर वह हमेशा की तरह सोने के लिए बिस्तरे पर आई। उसे नींद नहीं आई। उसे खुशी सी थी कि उसे मंगल मिल गया है, वह अपना इरादा बदल देगी, वह उससे जरूर विवाह करेगी और उसे जिन्दा रहने की भरपूर चेष्टा करेगी।

वह विचार रही थी कि हस्पताल के दरबान ने आ कर कहा—

"अमृत दीदी! वह मर गया।"

"कौन?" अमृत उचक कर बैठ गई।

कमरा नम्बर ६ का रोगी। दूसरी नर्स कह रही थी कि मरते-मरते उसने आप का ही नाम लिया।"

अमृत पागल की तरह भागी। कमरे से लाश हटाये जाने का प्रयाग किया जा रहा था। वह बुत सी उस लाश की ओर बढ़ी। उसने उससे लिपट जाना चाहा पर उपस्थिति ने उसे रोक दिया।

पास में खड़ी नर्सें परस्पर बातें कर रही थी—"एकायक रोगी को जोर की खाँसी होने लगी। उसका मन घबराने लगा। डाक्टर ने तुरन्त स्टेथ्सकोप लगा कर हाल जाना। इन्जेक्शन देने के लिये तैयार हुआ ही था कि उसे जोर की खून की कै हुई और खून के साथ वह बेचारा...।

अमृत के आँसू नहीं थम रहे थे। सब नर्सें उसे सांत्वना दे रही थीं। वे उसे समझा रही थीं—"हर रोगी के साथ इस प्रकार का स्नेह कभी तुम्हें नुकसान पहुँचायेगा।"

अमृत ने कोई उत्तर नहीं दिया।

लाश जलाने के बाद अमृत कई दिनों तक रोती रही।

२३

***

मानसिक संघर्ष में अपने को व्यस्त रखती हुई अमृत अपने पेट के बच्चे का पोषण करने लगी। मनुष्य को अपने विश्वास के प्रति कितनी सच्ची आस्था होनी है, यह उसने अपने गर्भ को देखकर जाना? उसने कई बार सैनिटोरियम के इंचार्ज से कहना भी चाहा पर उसकी हिम्मत नहीं हुई।

नया इन्सान उसके पेट में पलता रहा। अमृत का नारीत्व दिन प्रति दिन जागता रहा। वह माँ बनेगी, उसकी कोख में उसका बीज पनप रहा है, जो उसकी आत्मा को प्यार करता था, जो उसे चाहता था। इस प्रकार की भावधारा में बह कर वह विह्वल हो जाती थी उसका मन कहता था कि उसका बच्चा ठीक मंगल जैसा ही होगा।

आइस्टिन का कोई पता नहीं था। वह विदेशों में ठीक खाना बदोश की तरह भटक रही होगी।

कितने दिन बीते, यह किसी ने ख्याल नहीं किया।

चार माह पूरे के पूरे बीत गये।

अमृत को अपने में परिवर्तन जान पड़ा तब उसने हिम्मत करके आखिर इंचार्ज को कह ही दिया।

सैनिटोरियम के इंचार्ज ने सहानुभूति की जगह उल्टा उसे भला बुरा कहा।

उसने मुँह बिगाड़ते हुए कहा—नर्स क्या है? यह बात मुझसे छिपी हुई नहीं है? दस-पांच रुपयों के पीछे अपनी इज्जत बेचने वाली नर्सें ऐसी कहानी बहुत आसानी से गढ़ सकती हैं।"

"मैं जो कह रही हूँ, वह सत्य है, मैं अपने पेशे की कसम खाती हूँ। अमृत ने विनती करके कहा।

'पेशा तो अब तुम्हारा खत्म होने वाला है ही। हस्पताल में इस प्रकार की नर्स के लिये जरा भी जगह नहीं है जो इस पेशे को बदनाम करती है, जो भ्रष्टाचार फैलाती है।"

अमृत की आँखों में आँसू आ गये—"आप मेरे बारे में एक दम गलत सोच रहे हैं।"

"मैं गलत सोच रहा हूँ या तुम मुझे गलत साबित करने की कोशिश कर रही हो। मैं नर्स नाम की चिड़िया को खूब पहचानता हूँ।...ड्यूटी के बाद वह कहाँ-कहाँ किन-किन लोफरों के साथ घूमती हैं, इसे मैं खूब जानता हूँ। मुझे समझाने की कोशिश करना बेकार है।"

"लेकिन पाँचों अँगुलियाँ एक सी नहीं होतीं।" मैं कहती हूँ।

"...मैं जानता हूँ, मैं तुम्हारे मामले पर गौर करूँगा, अभी तुम जाओ।"

अमृत घर चली आई। उसने देखा कि हर आदमी उसे सन्देह की नजर से देखता है। उसकी पड़ोस की नर्सें उसके बारे में भद्दी-भद्दी चर्चायें कर रही हैं। और वह इतनी लाचार है कि अपनी सच्चाई का प्रमाण भी नहीं दे सकती। तब वह जी भर कर रोई।

सप्ताह भर के बाद उसे हस्पताल से खारिज कर दिया गया। हस्पताल की ओर मिला हुआ कमरा उसे शीघ्र छोड़ना पड़ा। समाचार पत्रों में उसकी खबर छपी थी जिसमें उस पर यह आरोप लगाया गया था कि भ्रष्टाचार के अपराध में उसे हस्पताल से निकाल दिया गया है।

वह वहाँ से सीधी कलकत्ते आई। उसने अपना डेरा आइस्टिन के घर जमाया। आइस्टिन की माँ ने उसके एक एक आने पर आश्चर्य किया लेकिन उसने उसे थकी-माँदी जानकर कुछ नहीं कहा।

इतना जरूर पूछा कि—"तुम्हारा एकायक यहाँ आना कैसे हुआ ?"

"कोई काम है।" उसने अनिच्छापूर्वक कहा।

"बहुत जरूरी है क्या ?"—विक्टोरिया ने अपनी आँखें उस पर इस तरह गाड़ दीं जैसे वह उसके चेहरे पर कोई विशेष भाव खोज रही है। अमृत डर सी गई। उसे सन्देह सा हुआ कि कहीं विक्टोरिया माँ ताड़ न जाय, इसलिये उसने दूसरी ओर पीठ करके अपने आँचल को सँभाला।

उसने अपने अँचल से पेट को अच्छी तरह ढँका और उसी तरह बैठ कर अपनी अटेची में से नई साड़ी पहनने को निकालने लगी।

वह यह बिलकुल भूल चुकी थी कि उसे विक्टोरिया को उत्तर भी देना है। लेकिन धोती को निकालते-निकालते उसे ख्याल आया तो वह तुरन्त बोली—"हाँ, बहुत ही जरूरी।"

"क्या छुट्टी लेकर आई हो ?"

अमृत ने इसका भी उत्तर नहीं दिया। वह किसी विचार में खोई हुई थी। उसे रह-रह डर सा लग रहा था कि कहीं विक्टोरिया माँ उसके राज को न जान जाय।

इस पर विक्टोरिया ने झुँझला कर जरा तेज स्वर में कहा—"मैंने जो कहा, उसे तुमने सुना—"

"मैंने तुमसे पूछा कि तुम छुट्टी लेकर आई हो ?"

"नहीं, मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया है मम्मी।"

"क्या किसी डाक्टर आदि ने...।"

"नहीं तो, फिर भी अब मैंने वहाँ रहना ठीक नहीं समझा, क्योंकि वहाँ मेरी इज्जत खतरे में थी।"

"तो तुमने बड़ा ही अच्छा काम किया ?...यहाँ खोजने पर तुम्हें अच्छी नौकरी मिल जायेगी। प्रभु ईसा तुम्हारी मदद करें।"—और वह धीमे-धीमे कदम बढ़ाती चली गई।

उसके चले जाने के बाद अमृत ने इतमिनान की साँस ली। उसने मन ही मन तय किया कि वह तुरन्त खाना खाकर बाहर चली जायेगी।

उसका मन अधिकतर यही सोच रहा था कि उसे जितना जल्दी

हो सके बाहर चले जाना चाहिये और जहाँ तक हो सके उसे मम्मी के समक्ष नहीं आना चाहिए ।

उसने तुरन्त साड़ी पहनी और टेबल पर रखे खाने को जल्दी जल्दी खाकर बाहर चली गई ।

उस समय चार बजे थे ।

उसने होटल में इच्छा न रहते हुए भी चाय पी । चाय पीकर उसने अपने आपको कुछ आश्वस्त और कुछ सजीव सा पाया ।

चाय पीकर वह सीधी फैले मैदान में चली गई ।

दूर तक हरा मैदान फैला था । वातावरण बिलकुल खामोश था ।

उसने अपनी नजर दौड़ाई । उसे शून्यता नजर आई तब वह एक पेड़ के नीचे जाकर बैठ गई । यह पेड़ आम सड़क से थोड़ी ही दूर पर स्थित था ।

थोड़ी देर बाद उसकी नजर एक ऐसे युवक पर पड़ी जो उसे बिल-कुल पहचाना सा लगा । उसने जरा नजदीक आकर पुकारा—"अशेष"

वह युवक चलता ही जा रहा था, जैसे सुना ही नहीं ।

अमृत ने एक बार जरा और जोर से पुकारा—"अशेष !"

युवक ने चौंक कर अमृत की ओर देखा । वह दंग रह गया, चाहा कि भाग जाये और इसी आशय से जोर से कदम बढ़ाये जाने लगा ।

पल भर कर के लिये अमृत ने यह सोचा कि शायद मैंने उसे पहचानने में गलती कर दी है लेकिन उसकी जागरूकता ने कहा कि यही अशेष है । और वह बहुत तेजी से कदम उठाने लगी ।

सड़क शून्य थी ।

धूप तेज थी ।

अमृत ने तेज बढ़ते हुए युवक के नजदीक जाकर कहा—'अशेष ! अशेष !! मैं हूँ अमृत ।

युवक ने दाहिनी ओर मुड़ कर गायब होना चाहा पर अमृत झल्ला-कर उसके सामने आ गई ।

"अशेष...!" उसने गुस्से से पुकारा।

अशेष की निगाहें जमीन में धँसी हुई थीं। उसने उसी मुद्रा में कहा—"मुझे जाने दो अमृत! मैं तुम्हें पहचान कर ही कतराया था।"

"क्यों?"—और उसने अपनी दृष्टि अशेष के चेहरे पर जमा दी। उसने देखा, अशेष कितना दुबला-पतला हो चुका है। उसका सुडौल तन बेडौल हो गया है और उसके सुन्दर मुख पर हल्की-हल्की कालिमा छा गई है। गहरी काली आँखों के नीचे काली-काली छाया सी उभर आई है। उसका दिल दया से भर आया यह सब देख कर।

"अशेष! मुझे माफ कर दो। मैंने तुम्हें बहुत कड़ा पत्र लिखा था, उस स्थिति में मेरे लिए वही संभव था।"

"कोई बात नहीं, अच्छा मैं चलता हूँ।"

"कहाँ?"

"एक काम जा रहा हूँ। फिर मिलूँगा, नमस्ते।"

"पर ठहरे कहाँ हो?"

"बाद में बताऊँगा, अभी मुझे देर हो रही है।" और अशेष हवा की तरह चला गया।

अमृत ने मन ही मन सोचा शायद ग्लानि से भरा जा रहा होगा।

ठीक शाम को संयोग से अमृत की भेंट 'विक्टोरिया मेमोरियल' में अर्चना से हो गई।

अर्चना एक किनारे एक सुन्दर बालक से तोतली भाषा में बातचीत कर रही थी।

बच्चा बहुत ही प्यारा और सलोना था।

वह अर्चना से पूछ रहा था "माँ! मेले बाबू ती आये नहीं?"

"आयेंगे बेटा! जरूर आयेंगे।"

अमृत एक पल के लिए सोच कर कि अर्चना उसकी चाल-ढाल से उसके गर्भ के बारे में न जान जाय—ठिठकी। उसने धोती के पल्ले को व्यवस्थित किया और मधुर स्वर में बोली—"नमस्ते अर्चना देवी।"

"कौन ?······अमृत देवी !" उसने उठ कर अमृत का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"आप कब आईं ? अशेष के द्वारा पता चला था कि आप बाहर गई हुई हैं ?"

"हाँ मैं इधर बाहर ही थी। आज ही आई हूँ।"

"कैसी हो ?"

"अच्छी हूँ।"

"बैठिये।"

अमृत बैठ कर बच्चे को प्यार से निहारने लगी।

"देखो रवि ! यह हैं तुम्हारी मौसी।"

"आओ रवि ?" अमृत ने अपने दोनों हाथ उस ओर फैला दिये पर रवि दौड़ कर अपनी माँ की गोद में जा छुपा।

अमृत ने मुस्कराते हुए कहा—"जानता नहीं है न,···है बड़ा प्यारा।"—कह कर उसने उसके गालों को छू लिया।

रवि उसे विचित्र निगाह से देखने लगा।

"देखो, कैसे टुकुर-टुकुर देखता है।" अमृत ने अर्चना से निगाहें मिला लीं। उसे अर्चना के मुँख पर अपार सन्तोष जान पड़ा।

"क्या आपकी भेंट अशेष से हुई थी ?"

"हाँ, आज दोपहर को संयोग से राह चलते अचानक हुई थी, पर न जाने ठीक ढंग से उसने बातें क्यों नहीं की। कतरा कर चला गया।"

"कतरा कर नहीं चलता तो करता ही क्या ?······भगवान ने उसे अपनी करनी का बहुत ही कड़ा दण्ड दिया है।" अर्चना जरा असन्तुष्टि से बोली।

"क्यों ?"—अमृत की आँखों में प्रश्न चमक उठा। वह अर्चना के मुख की ओर बड़े गौर से देखने लगी।

"हम सब के साथ छल करके उसे भी सुख नहीं मिला।" जानती हो अमृत देवी, उसकी विपत्तियों को सुन कर मुझे तो फिर से दया आ

गई और मैंने उसे अपने मकान में जगह दे दी।"

"आप का मकान ?" आश्चर्य से पूछा अमृत ने।

"हाँ, सेठ भंवरलाल ने, अपने पिता जी की मौत के बाद अपने कई मकानों में से एक मकान मेरे नाम भी कर दिया है।...सच कहती हूँ कि वे मुझे बहुत ही प्यार करते हैं। उनसे सम्बन्ध न होने पर न जाने आज मैं किस स्थिति में होती ? हालाँकि मैं उनकी विवाहिता नहीं हूँ। उनके घर भर में इस रहस्य को केवल उनकी बीवी जानती है पर मैंने उनकी एकलौती रखैल बन कर अपने आपको एक भयानक नरक से बचा लिया। वैसे तो यह भी नरक ही है, मग पीड़ा पहुँचाने वाला। लेकिन इस नरक ने मुझे 'कहीं की' कही जाने भर को तो रखा है। यह रवि उनसे ही तो है।" कह कर अर्चना चुप हो गई।

अमृत विचारने लगी कि अब बात का सिलसिला फिर कैसे शुरू करें ? अर्चना तो कहाँ से कहाँ चली गई ? पर अर्चना ने अमृत को बिलकुल खामोश देख कर पुनः कहना शुरू किया—"मैंने अशोष को खास हिदायत दे दी है कि वह मुझे बहन कह कर पुकारा करे। वह यदि ऐसा नहीं करेगा तो कभी न कभी मेरा सेठ जरूर सन्देह कर बैठेगा।

"लेकिन आजकल वह करता क्या है ?" अमृत ने नया प्रश्न किया।

"सड़कों पर इधर-उधर घूमता है। घर वालों से उसके सम्बन्ध बहुत अधिक खराब हो चुके हैं। उनके यहाँ जो स्थाई तौर से काम-काज करते आ रहे हैं, उन्हें हटाया भी तो नहीं जा सकता। अतः मैं ही कभी दो-चार रुपये दे देती हूँ।"

अमृत यह सुन कर बिलकुल गंभीर हो गई। उसकी आँखें सजल हो उठीं। उसने आह छोड़ कर कहा—"मनुष्य क्या से क्या बन जाता है ? यही अशोष था जिसके पीछे मैं और आप भागती थीं और वही अशोष आज है कि हम सब को देख कर मुँह चुराता फिरता है।" अमृत एकाएक रुक कर वापस बोली "और उसकी बहू ?"

"अमृत देवी ! अशोष की बातें बहुत लम्बी हैं। दो-चार दिन में

यहीं आऊँगी तब सुनाऊँगी। अभी मैं चलती हूँ, देखिये वे आ रहे हैं।"

अर्नना चली गई।

अमृत आते हुए सेठ जी को पैनी निगाहें से घूरने लगी। अँधेरा बढ़ता जा रहा था। कोलाहल वहाँ से जाते हुए जन समुदाय के साथ भागता जा रहा था।

अमृत भी आहिस्ते-आहिस्ते कदम उठाती चली गई।

२४

***

"क्या अशेष तुम्हारे पास एकाएक टपक पड़ा ?" अमृत ने चाय की चुस्की लेते हुए पूछा।

"नहीं, ऐसा तो नहीं, उसने मेरा पता कहाँ से प्राप्त किया यह मैं नहीं जानती। पर एक दिन उसका बहुत ही दुःख भरा खत मेरे पास आया था। उसे पढ़ कर मेरे हृदय में दया जाग्रत हो गई। नारी जो ठहरी। इस धरित्री की भाँति हमारा भी जन्म इस सृष्टि के परम सुख चरम सुख का भार ढोने के लिए ही तो हुआ है। समाष्टि का दुःख तो नहीं बंटा सकती, पर बहिन ! व्यक्ति जो जीवन में एक क्षण के लिए भी आया हो उसका वैसा करुण पत्र पढ़ कर उपेक्षा करने की सामर्थ्य भी कहाँ से लाती ? मैं पिछला सारा बैर-भाव भूल कर उसे पत्र द्वारा आश्वासन देने लगी। मैंने उससे वायदा भी किया कि यदि वह कलकत्ते आ जायेए तो मैं जितनी हो सकेगी उतनी सहायता करूँगी।"

"लेकिन उसका परिवार ?"—अमृत ने फिर अपना पहले वाला प्रश्न दोहराया।

"कमीने आदमियों का परिवार कैसा ? कपूत का घर में पैदा

होना ही तो बुरा है। यहाँ से अपने पाप को छिपा कर जब आप दिल्ली पहुँचा तो एक ऐसी लड़की के फन्दे में फँस गया जिसने इसकी अक्ल को ठीक कर दिया। सुनिये अमृत देवी, मैं आपकी सारी शंकाओं का निराकरण कर दूँगी। उस लड़की के कहने पर यह घर गया क्योंकि इसे खासे रुपयों की जरूरत थी। बिना रुपयों के दर्शन से वह लड़की इसके चक्कर में आने वाली तो थी नहीं। उसने अशेष से साफ कह दिया था कि वह यदि उसकी जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ है तो उसे उसके प्यार का दम नहीं भरना चाहिए।

अशेष और प्यार का दम न भरे, यह कभी हो सकता था? अपने आप को बड़े जागीरदार का लड़का जो घोषित कर चुका था।

उसके कहने पर सीधे अपने घर आया और सारी जमीन बेच-बाँच कर चलता बना। सुनते हैं कि उसके बाप ने जमीन बेचने पर बहुत एतराज किया।

बुड्ढे ने दहाड़ कर कहा—जमीन हमारी माता उसे तू बेचने वाला कौन?"

"मैं बेचूँगा और जरूर बेचूँगा?"

"कैसे बेचता है। जब तक मैं हूँ तब तक तू उसे नहीं बेच सकता।"

'देखिये पिता जी, या तो आप सीधे-सादे मान जाइये वर्ना···।"

"तू इस बुढ्ढे का हाथ-पाँव तोड़ देगा यही न।"

"······।" अशेष चुप रहा। पर उसकी क्रोध से जलती हुई आँखें बोल उठी—"हाँ, मै आप के हाथ-पाँव तोड़ कर रख ही दूँगा।

बुढ्ढे ने तड़पते हुए स्वर में अपनी घरवाली को पुकारा—"सुनती हो अपने नालायक बेटे की बातें, मुझे धमकी देता है।"

माँ ने अपने पति को हाथ जोड़ कर समझाया—आप जाने दीजिए, हमें कितने दिन और जिन्दा रहना है।···बाद में दुःख होगा तो इसे, भूखों मरेगा तो यह।"

"वाह, तू ने कह दिया और मैंने मान लिया। मैं जीते जी अपनी

जमीन नहीं बेचने दूँगा।"

"देखो, जवान बेटा है, अधिक बात बढ़ी तो'''।"

"मुझे पीट लेगा।" बुढ्ढे ने सावधान होते हुए कहा।

"शायद ! जवानी में हाथ छूटते देर नहीं लगती। मैं कहती हूँ कि उस नालायक से जुबान मत लड़ाइये।" पर बुढ्ढा माना नहीं।

अर्चना ने बहुत ही दर्द भरे स्वर में कहा—"रात को फिर यही चर्चा उठी। क्रोध में अशेष ने अपने बुढ्ढे बाप को पीट दिया। माँ यह अदर्शनीय दृश्य नहीं देख सकी। उसे विश्वास नहीं हुआ कि उसका कोख का जन्मा इतना कमीना और बेहया हो सकता है ?"

वह शेरनी की तरह गुर्राती आई और अशेष के हाथों में जमीन के कागजात फेंकती हुई बोली—"ले और अपनी माँ-बाप की इज्जत को बेंच आ, पर याद रखना एक दिन इसी तरह तेरा भी हाल होगा, न तुम्हें कोई रोटी देने वाला होगा और न कोई पानी पिलाने वाला होगा। दूर हो जा हमारी आँखों से। और माँ बूढ़े का अँग-अंग सँभालने लगी जैसे वह पता कर रही है कि कहीं उसके हाथ-पाँव तो टूट नहीं गये।

दूसरे दिन अशेष ने अपने हिस्से की सारी जमीन बेच दी।

जमीन बेच कर जब वृद्ध आया तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि जैसे कोई उसकी अपनी प्यारी बेटी को जबरदस्ती बेच कर चला आया है।

उसी रात अशेष पुनः दिल्ली चला गया।

उसकी बीबी ने आत्मग्लानि के मारे आत्महत्या कर ली।

अर्चना कुछ देर तक बिलकुल मौन रही, फिर अमृत की आँखों में अपनी आँखें गडाती हुई बोली—"यह है आज की सभ्यता। मनुष्य एक मरीचिका पीछे भाग रहा है। अपने आपको 'बड़ा आदमी' बनाने की भरपूर कोशिश कर रहा है। चाहे वह कोशिश अनुचित आधारों पर ही क्यों न अवलम्बित हो।"

"जरा सोचो अमृत ! अर्चना का अपनापन भरपूर जाग उठा—

मनुष्य इस युग में कितना बनावट-पसन्द हो गया है। स्नेह, प्रेम, ममता और साधारण मनुष्यता के परे हो कर वह इस होड़ में लगा है कि मुझे लोग कुछ मानें !...और यह मनवाने की इच्छा मनुष्य को अपनी वास्तविक स्थिति से परे कर देती है। मुझे अपनी परिस्थिति से भयंकर असन्तोष है लेकिन मजबूरियों ने चारों ओर से जकड़ रखा है। मैंने अपना सर्वनाश करके दो को तो जिन्दा कर लिया है।"

अमृत अपने सामने बैठी भावुक नारी के व्यथित हृदय के उद्गारों को बड़े ध्यान से सुन रही थी। जब अर्चना ने अपना कहना बन्द कर दिया तो अमृत ने अशेष के बारे में जरा विशेष जानना चाहा—"फिर क्या हुआ ?"

"यह मैं पहले ही जानती थी कि तुम अशेष के बारे में विस्तार रूप में जानना चाहोगी इस लिए मैं उसकी डायरी ले आई हूँ। तुम उसे अच्छी तरह पढ़ सकती हो।" अर्चना ने उसके हाथ में डायरी थमा दी।" इसे पढ़ कर मुझे सुरक्षित हालत में वापस लौटा देना।

अमृत ने डायरी लेकर अर्चना को नमस्ते किया और वह भारी कदम उठाती लौट आई।

२५

***

रात के खाने से निवृत हो कर उसने विक्टोरिया से कुछ भी बातें नहीं की। उसने कह दिया था कि आज वह बहुत थकी है, उसके सिर में हल्का दर्द है। वह सीधी जाकर सोयेगी। लेकिन उसने बिस्तर पर लेट कर डायरी के पन्नों को पलटना प्रारंभ किया। उसने एक बार में तमाम डायरी पढ़ डाली और फिर उन पन्नों को दुबारा पढ़ा जिसमें अशेष के जीवन की घटनाओं का विशेष सम्बन्ध था।

दिल्ली

फरवरी—३

दिल्ली मेरे लिए बिलकुल नई जगह थी।

मैं अपने मन को लाख बार इस बात को मनाने के लिए जोर दे रहा था कि वह ऊबे नहीं पर वह इसके बावजूद भी ऊबा जा रहा था मेरे सामने कलकत्ते की रंगीनियाँ नाच रही थीं। वहाँ के रोमांस भरे दिन, हँसी, कहकहे, बहारें और न जाने क्या क्या? दो ही दिन में मुझे महसूस सा हुआ कि मेरा दम घुटा जा रहा है। मुझे कोई साथी चाहिए, साथी।

उस रात मैं सो नहीं सका। रात भर बिस्तरे पर करवटें बदलता रहा। कभी-कभी उठकर होटल की छत पर घूमने आ जाता था।

उस दिन आकाश बिलकुल साफ था। चाँद नहीं था पर तारों का धीमा-धीमा प्रकाश संसार को अपनी हल्की-हल्की रोशनी जरूर दे रहा था।

होटल के नीचे कुछ भिखारी एक दूसरे पर गिरे आराम से सो रहे थे। मैंने सोचा, आज के युग में वही सबसे सुखी है जो जरा भी नहीं सोचता, जिसे केवल अपने से सरोकार है—'सबसे भले हैं, मूढ़जन जिन्हें न व्यापे जगत गति।' मैं कुछ देर तक उन भिखारियों को देखता रहा और अन्त में तारों को निहारता नीचे उतर आया।

मैंने मन ही मन निर्णय किया कि मुझे शीघ्र ही कोई साथी खोजना चाहिये। तब मैंने निर्णय किया कि मैं कल किसी होटल में जाऊँगा।

होटल के बाबत मैं सोचता-सोचता सो गया।

फरवरी—२०

निरन्तर १७ दिन के बाद आज मेरा परिचय संतोष से हुआ।

संतोष पंजाबिन है और एक बड़े खानदान से बताती है। उसका पिता लोहे का व्यापार करता है और भाई मेरा निकट का मित्र है।

ये लोग नये विश्वास पर पलने वाले हैं। तभी तो संतोष का भाई मुझ पर पूर्ण विश्वास पहले ही दिन से करने लगा है। उसका कहना है कि वे लोग काफी एडवान्स है।

संतोष के प्रथम परिचय ने ही मुझे मोह लिया। वह बहुत ही सुन्दर है, इतनी सुन्दर जितनी मेरे चित्रों की कोई नवयौवना।

मैंने उससे कल मिलने का वायदा किया और मैं चला आया।

फरवरी—२७

आज सन्तोष अकेली आई थी।

उसने पीले रंग की चमकदार रेशमी पोशाक पहन रखी थी। भरे जूड़े में उसने मोगरा के फूलों की सुन्दर वेणी बाँध रखी थी। उसका बाल बाँधने का ढंग बड़ा आकर्षक और नित नवीन होता था।

उसने मेरे पास बैठते हुए पूछा—"भैया नहीं आये ?"

"नहीं।"

"मैं तो सिनेमा का टिकट ले आई हूँ।"

'थोड़ी देर तक इन्तजार कर लें।"

"पर टाइम कहाँ है ? चलिये, यदि उन्हें आना होगा तो आ जायेंगे।" उसके स्वर में अपने भैया के प्रति शिकायत थी।

हम दोनों ने प्रथम बार अकेले एक साथ सिनेमा देखा। मैं बार-बार अपनी निगाह पर्दे से हटाकर संतोष के चेहरे पर जमा देता था और मन ही मन सोचता कि क्या यह किसी हीरोइन से कम है।

वह रात मैंने करवट बदलते ही गुजारी।

फरवरी—२८

दिल्ली का कनाट प्लेस और वही होटल।

आज संतोष ने यह स्वीकार कर लिया कि वह मेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।

मैं आत्म-विभोर सा हो रहा हूँ। चाहता हूँ कि एक बार वह चित्र फिर मेरी आँखों के सामने घूमता। मुझे महसूस होता है जैसे संतोष

होटल की प्राईवेट केबिन में मेरा हाथ अपने हाथ में लिये कह रही है अशेष ! सच कहती हूँ कि मुझे तुम्हारे बिना सब सून-सूना लगता है। ऐसा महसूस होता है कि मेरा तुम्हारा प्यारा जन्म-जन्मातरों से है।"

यह फिल्म के संवाद थे। इसमें कितना प्रेम भरा था। मैं अतृप्त आँखों से संतोष को देखता। उसकी आँखों में वास्तव में प्यार भरा है।

जीवन में यदि किसी ने मेरे हृदय में सच्चे प्रेम की ज्योति जलाई है तो केवल तुमने, संतोष ! हम एक-दूसरे पर पक्का भरोसा रखेंगे। तब संतोष ने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर आहिस्ते से चूम लिया उसके अधरों के मादक स्पर्श ने मेरी रग-रग में बिजली सी दौड़ा दी।

मैंने उस दिन उसे एक सुन्दर साड़ी खरीद कर दी। साडी हाथ में लेते हुए उसने मुझे नम्रता मे निवेदन किया कि भैया को वह पेंट का टुकड़ा बहुत ही पसन्द है। मैंने उसे भी उसे दिला दिया।

मेरे १६० रुपये खर्च हो गये।

उस दिन रात को मैंने ८ बजे उसके भैया के साथ पहली बार शराब पी। उस समय मुझे महेश याद आया और याद आये उसके वे शब्द—'कापुकता पूंजीवाद वर्ग का पतनशील आचरण है। और तुम्हारा रास्ता भी ठीक उसी ओर बढ़ रहा है। पता नहीं कब तुम शराब पीने लगो, और कब तुम अपने इष्ट मित्रों की बहू-बेटियों पर—।

मैंने शराब का खारा घूंट हलक से उतारते हुए मन ही मन कहा—"बकवास है, बिलकुल बकवास।"

उस दिन मेरी रात भर आँख ही नहीं खुली।

मार्च—३

मैंने होटल में रहना छोड़ दिया क्योंकि संतोष के भैया ने मुझे नई दिल्ली में एक सुन्दर फ्लेट दिला दिया था, १५०) रुपये का।

मार्च—२५

आज माँ का घर से खत आया था।

उसने अपने सैकड़ों आशीर्वादों के साथ लिखा था कि तुम्हारी बीवी की तबियत खराब है। एक बार तो उसके मरने तक की हालत हो गई थी पर भगवान ने उसे बचा लिया।

उसने मरने की हालत में हमको बताया है कि तुम उसका सारा जेवर दिल्ली जाते समय लेकर गये हो। क्या बेटा यह ठीक है ?... तुम तो जानते हो कि वह कम से कम बीस हजार का जेवर है।

मैंने खत को मसल कर फाड़ दिया है।

उस दिन मुझे अपनी पत्नी पर बहुत ही क्रोध आया। कम्बख्त को बार-बार समझाया था कि कह देना मुझे पता नहीं, मैं क्या जानूं, कोई चोरी करके चला गया है पर वह झूठ नहीं बोल सकी। इस झूठ बोलने के बदले में मैंने उसे आश्वासन दिया था कि मैं तुम्हें शीघ्र ही दिल्ली अपने पास बुला लूंगा जहाँ हम बहुत आनंद से रहेंगे।

पर यहाँ आने के बाद मैंने उस बेचारी को एक भी पत्र नहीं डाला। ओह, मैं कितना छली हूँ।

फिर भी मैंने माँ को डाँटते हुए लिखा कि मैं गहनों के बारे में कुछ नहीं जानता। मैं इतना कमीना थोड़े ही हो सकता हूँ। कहीं तुम्हारी बहू ने अपने भैया-वैया को न दे दिया हो।

इन दिनों मैं तो बहुत ही कष्ट में हूँ।

मार्च—२८

माँ का फिर खत आया है।

उसने लिखा है कि तुम्हारी बीबी से पहले हाथ जोड़ कर जेवरों के बारे में पूछा। जब इस पर उसने यह कहना नहीं छोड़ा कि गहने तो वे ही ले कर गये हैं तो तुम्हारे बाप ने उसे भीतर कमरे में बन्द कर के पीटा पर वह अभी तक यही कहती है कि गहना तो वे ही ले गये हैं। बेटा ! हमारा तो सत्यानाश हो गया। तुम्हारे पिता जी दो रोज से खाना तक नहीं खाते हैं।

मैंने उसे पत्र लिख कर धीरज बँधाई कि जो हो गया वह तो हमारी

फूटी तकदीर से हुआ ही, भगवान हमें और देगा। मैं शीघ्र ही एक अच्छी नौकरी पर लगने वाला हूँ।

मैंने माँ को ढाढ़स भरा खत लिख भेजा।

मार्च—३१

आज संतोष का भैया मुझसे १००) रुपये इसलिए ले गया कि उसकी बहिन को एक सूट का नया कपड़ा खरीदना है। वह कल मुझसे लाल किले में भेंट करेगी। ठीक एक और दो बजे के बीच।

मैं यह संवाद पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। आज मैंने मन ही मन यह तय किया कि कल मैं संतोष के साथ अपने प्रेम का अगला कदम बढ़ाऊँगा।

अप्रैल—१

मैं दूल्हा बनकर ठीक पौने एक बजे ही लाल किले की ओर चल पड़ा।

भाग्य की बात समझिये जिस टैक्सी पर बैठा था वह पिंचर हो गई इसलिए मैं एक की जगह सवा बजे पहुँचा।

मैं बीस मिनट तक दरवाजे पर खड़ा रहा। और अन्त में लालकिले के भीतर यह सोचकर घुसा कि शायद वह पहले आ गई हो और मुझे न पाकर भीतर चली गई हो। क्योंकि मेरा विश्वास था कि प्रतीक्षा में एक पल भी एकाकी बड़ी मुश्किल से गुजरता है।

मैंने सारा लालकिला छान मारा पर सन्तोष मुझे नहीं मिली। मैं बड़ा बेचैन हो उठा। दो बज गये। मैं एक बार फिर दरवाजे पर आया पर सन्तोष नहीं मिली। मुझे आज पहली बार सन्तोष पर रोष आया कि वह मुझे झूठा ही वचन क्यों देती है। तब मैंने उसके घर जाना तय किया। पर सन्तोष ने घर आने के लिये सख्त मना कर रखा था। उसका कहना था कि उसका पिता यदि इस रहस्य के बारे में जरा भी जान लेगा तो वह गुस्से में मेरा तो गला घोंट ही देगा। उसने यह भी कहा था कि मेरा पिता मान-सम्मान का कड़ा

समर्थक है।

मैंने पाँच बजे तक उसकी आकुलता से प्रतीक्षा की।

मुझे लालकिले की दीवारें जेल की फौलादी और घुटती हुई दीवारें जान पड़ीं। अन्त में जलभुन कर मैं बाहर निकला। देखता हूँ कि सामने की सड़क पर सन्तोष के भैया जा रहे हैं।

तेज कदम उठा कर मैंने उसको पकड़ा और जरा नाराजगी के स्वर में डाँटा—"सन्तोष क्यों नहीं आई ?"

"नहीं आई ?"—वह हक्काबक्का सा हो गया फिर जोर से खिलखिलाकर बोला—"बन गये अशेष मियाँ, बन गये, आज तो पहली अप्रैल है, 'फूल-डे' मूर्ख-दिवस।

मैं क्रोध से अपने दोनों तरफ के दाँतों को भिड़ा बैठा—"फूल डे ....फूल डे।"

आज मैंने चार पैग उड़ाये पर अपने घर में ही।

अप्रैल—१५

आज सन्तोष ने मेरे गले में बाँहें डालकर झूलते हुए नादान बालक की तरह पूछा—अशेष ! तुम्हारे घर पर तो रुपयों के ढेर होंगे ?"

मैंने उसके गाल पर धीरे से चपत जमाते हुए कहा—"सन्तोष ! बड़े आदमियों के रुपये घरों में ढेरों के रूप में नहीं होते हैं बल्कि वे बैंकों में जमा रहते हैं।"

"तो तुम हर रोज बैंक से पैसा लाते हो ?"

नहीं, मेरे पास दस-पन्द्रह हजार रुपये हैं।"

सन्तोष खुश होकर बोली—"मेरे पिता जी पैसे वालों को ही दिल से चाहते हैं। मेरी तो किस्मत बहुत ही अच्छी है कि तुम मुझे पैसे वाले ही मिल गये। मुझे विश्वास है कि हमारा प्यार अवश्य सफल होगा।

आज मैं बहुत चिंतित इसलिए रहा कि कहीं मेरा भेद खुल गया तो...... !

और मुझे आज बड़ी देर से नींद आई।

मई—४.

आज मैं बहुत खुश इसलिये हूँ कि मैंने अपने बहुत बड़े एहसान से सन्तोष के बाप को बोझिल कर दिया है। मैंने उन्हें दस हजार रुपये दे दिये। दोपहर को सन्तोष का पिता आया था। उसने मेरे सामने हाथ फैला कर गिडगिडा कर कहा मेरी इज्जत धूल में मिल रही है अशेष बाबू! मुझे आज के आज पचास हजार रुपये चाहिये। मैं जल्दी ही लौटा दूँगा।

मैंने उन्हें समझाया कि मेरी इतनी बड़ी रकम यहाँ की बैंक में नहीं है।

'फिर आपके पास कितना है?"

'यही आठ दस हजार!"

"यही दे दीजिए, शेष एक दो जगह से और प्रबन्ध करूँगा।"

मैंने उन्हें दस हजार रुपये दे दिये। उनके जाने के बाद सन्तोष आई।

आज वह बड़ी खुश थी। कहने लगी—"तुमने यह अहसान कर के मेरे पिता जी को अपने कब्जे में कर लिया।"

मैंने अभिमान से कहा—"प्यार में मनुष्य सब कुछ ` सकता है।"

तब सन्तोष ने मुझे कामुक दृष्टि से देखा। आज उसकी हर हरकत बदली हुई थी। मैंने भी उसे प्यार से कनखी मारी—"क्या बात है सन्तोष? तुम इतनी खुश क्यों हो?"

"खुशी का राज बता दूँगी तो जमीन पर खड़े नहीं रहोगे।"

"ऐसा कौन सा राज है?"

"पिता जी कह रहे थे......कह रहे थे? कि अब सन्तोष की शादी शीघ्र ही अशेष बाबू से करने वाला हूँ।"

'सच!'

"अब तुम्हें एक काम जल्दी से करना चाहिए!"

'वह क्या!"

"बीस-पच्चीस हजार रुपये ले आओ और पट से शादी कर लो! ......मेरे पिता जी का विचार है कि वे अपने व्यापार में तुम्हारा भी हिस्सा कर देंगे।"

उसके चले जाने के बाद मैं घटों सोचता रहा कि अब मैं रुपये कहाँ से लाऊ अन्त मे मेरी आँखों के सामने अपने घर की जमीन नाच उठी।

मैंने शीघ्र ही घर जाने का निश्चय कर लिया

मई—८

घर में जमीन के लिए बहुत बड़ा काण्ड हुआ।

मैं अंधा बना हुआ था। पिता जी के विरोध करने पर मैंने जो भी अपने मन में आया उन्हें सुनाया।

बेचारी माँ अपनी आँखों में आँसू भर कर मुझे रोते स्वर में समझाती रही पर मैं सन्तोष के सामने अपनी बेइज्जती कराने के लिए तैयार नहीं हुआ। अन्त में क्रोधवश मैंने पिता जी को पीट भी दिया मेरे जीवन के वे बहुत ही बर्बर और नीच क्षण थे। आखिर मैंने जमीन के सारे कागजात अपने कब्जे कर लिये।

मेरी बीबी ने मेरे पाँव पकड़ कर यह प्रार्थना की कि मैं घर का सत्यानाश करने पर क्यों उतरा हुआ हूँ। मुझे उस पर बहुत क्रोध आया और आने की बात ही थी। भला एक पांव की जूती मुझ जैसे समझदार व्यक्ति को उपदेश दे। मैंने उसके भी गाल पर चाँटा लगाया।

पास-पड़ोस वाले भी कुछ आतंकित जान पड़े।

मई—९

मैं तमाम जमीन के बीस हजार रुपये लेकर दिल्ली रवाना हुआ। मेरे सामने सतोष का चेहरा घूम रहा था।

शीघ्रता में मुझे जमीन बेचने में काफी घाटा उठाना पड़ा।

जून—१०

रात को नौ बजे हैं।

अभी गाड़ी म सबके सब सोये हुए ।

सेकिन्ड क्लास के इस डिब्बे में मैं हूँ और मेरे सिवाय तीन प्राणी और हैं। एक है पंजाबी लाला और दूसरे है मद्रासी पति-पत्नी।

पंजाबी लाला बड़े ही रूखे स्वभाव के हैं पर मद्रासी दम्पति बड़े ही मिलनसार। उनकी पत्नी जिसमें किसी प्रकार का आकर्षण नहीं है पर वह मुझे अपनी बीबी की याद जरूर दिला रही है।

वैसे मेरी बीबी का इस महिला से किसी प्रकार का मुकाबिला नहीं हो सकता। न इसकी सूरत अच्छी है और न ही इसमें कोई सौन्दर्य जनित आकर्षण ही, फिर भी यह एक पत्नी है, इसलिए मुझे मेरी बीबी बार-बार याद हो उठती है।

मैं अपने मन को अपनी बीबी से हटाना चाहता हूँ, पर वह कम्बख्त न जाने क्यों नहीं हट पा रहा है।

बड़ी मुश्किल से मैंने अपने विचारों को व्यवस्थित किया। अब मेरे सामने संतोष थी और संतोष की दिल्ली।

मैं सोचने लगा।

कल दिल्ली पहुँच जाऊँगा। वहाँ सन्तोष होगी और सन्तोष के साथ नया जीवन! नया रोमांस!

अब मैं सन्तोष के पिता से कहूँगा कि मैं भी कोई अदना आदमी नहीं हूँ, जमींदार का लड़का हूँ।

संतोष मेरी आँखों के आगे घूम जाती है। मैं हठात् सोच बैठता हूँ कि अपनी किसी से शादी हो सकती है तो वह पंजाबी छोकरी से। तब मुझे अमृत याद आती है। उसका कटा होठ और कास याद आता है। यदि मेरी उससे शादी होती तो...। मेरे शरीर में हल्का रोमाँच सा हो जाता है।

जून—१२

आज मैंने रुपयों की शक्ति को जाना कि रुपया क्या करा सकता है?

दोपहर को मैंने संतोष के भैया को शराब पिला कर और रुपये देकर इस बात के लिए राजी कर लिया है कि वह कल संतोष को मेरे साथ रात भर रहने के लिये छोड़ देगा।

उसने मुझ से प्रतिज्ञा कराई है कि मैं उसके साथ अनुचित व्यवहार न करूँ।

आज मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ।

जून—१३

प्रभात होते ही संतोष चली गई।

रात भर की खुमारी मेरे पर अब भी थी।

हम दोनों ने कल रात भर प्यार किया, अपने भावी जीवन की मनोरम कल्पनायें की। मैं यह सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुआ कि संतोष का बाप अपने व्यपार में मेरा भी हिस्सा रखने वाला है। आज रात को मैं बहुत सँयमित रहा, बस केवल संतोष की हरकतों पर नाचता रहा। मुझे इस बात का बड़ा भय था कि कहीं संतोष मेरे द्वारा की गई हरकत से नाराज न हो जाय।

यह रात मेरे जीवन की महत्वपूर्ण रात मानी जायेगी।

जून—१५

आज सबेरे-सबेरे संतोष का भैया कह कर गया था कि पिता जी शीघ्र ही संतोष की मँगनी आप से करने वाले हैं। मैं यह सुन कर फूला नहीं समाया।

लेकिन दो बजे माँ का तार मिला कि मेरी बीबी ने आत्महत्या कर ली है। मेरा मन व्यथा से भर आया। मेरी आत्मा ने कहा कि मैं ही उसका असली हत्यारा हूँ। मैं घंटे तक पत्थर की तरह निश्चल बना बैठा रहा।

चार बजे संतोष आई।

मैंने उसे अपना राज नहीं बताया।

तो भी उसने मेरे चेहरे के भावों को ताड़ लिया और पूछ बैठी

क तुम उदास क्यों हो ?

मैंने जबरदस्ती मुस्करा कर बात को छिपाया पर मेरा अन्तर्मन मुझे बहुत ही पीड़ा पहुँचा रहा था।

मुझे संतोष के साथ घूमने जाना ही पड़ा लेकिन मैं तमाम रास्ते उदास रहा।

जुलाई—१

रात रभ मैं संतोष की प्रतीक्षा करता रहा पर वह नहीं आई।

आज मेरी मँगनी की तारीख तय होने वाली थी फिर वह क्यों नहीं आई, यह सोचकर मेरा मन सन्देह में पड़ गया।

मैंने बोतल निकाल कर शराब पीनी शुरू की। पीते-पीते मुझे किसी शायर की यह पंक्तियां याद हो उठीं कि, इतना पी, कि तेरी जिन्दगी पीना बन जाय।

मैं अपनी जिन्दगी को पीना बनाने लगा।

जुलाई—३

मैंने यह तय किया कि यदि आज संतोष नहीं आई तो मैं उसके घर चला जाऊँगा। अब मैं उसकी और अधिक प्रतीक्षा करने में असमर्थ हूँ। वह यदि घटे भर तक नहीं आई तो मैं उसके घर चला जाऊँगा। वह आई नहीं। मैं अप-टू-डेट बन कर उसके घर चला।

मुझे महसूस हो रहा था कि जैसे इस संतोष की नारी ने मेरी सारी चेतनायें और चतुराई को अपने रूप-जाल में फांस लिया है।

अंध-विश्वासी औरतें पत्नी भक्त पतियों के बारे जो यह उलाहना करती है कि इसकी बहू ने इस पर टोना कर दिया, ठीक वैसा ही हाल मेरा था मुझे संतोष के अलावा कुछ भी नहीं सूझ रहा था। मैं उसके बताये मकान नम्बर पर गया। मकान बहुत ही शानदार था। किसी सेठ की हवेली ही थी। मैंने उसके दरबान से पूछा—"मिस संतोष है ?"

"कौन संतोष ?" पठान ने कहा।

"तुम्हारे सेठ की लड़की।"

'अरे वाह ! तुम भी खूब आदमी हय। हमारे सेट-वेट की लड़की-वड़की नहीं हय।"

"यह मकान किसका है।" मैंने आंखें फाड़ते हुए पठान से पूछा।

"भई,यह मकान किसका है ? तुमी नहीं जानता, वाह जी, यह तो सेठ मनसुख दास का मकान हय तो तुमी ने किसी से मुहब्बत किया हय, फरहाद का औलाद बना हय। जाओ, भाग जाओ, कहीं और ढूंढो।"

मैं सन्न रह गया। मुझे महसूस हुआ कि यह पठान जरूर झूठ बोल रहा है। संतोष हवा हो गई।

"ओह ! यह मेरे साथ कितना बड़ा धोखा था।...राजपूत का घर हिजड़ा लूट कर ले गया।

जुलाई---२०

दिल्ली की ठंडी सड़क पर मैं विक्षुब्ध सा घूम रहा हूँ।

पुलिस को मैंने रिपोर्ट लिखा दी है। वह मामले की खोज कर रही है। मैं भूखा हूँ। सड़क सूखी है—मेरे सामने एक भिखारी बैठा-बैठा जूठन खा रहा है।...भूख मुझे भी है पर मैं जूठन कैसे खा सकता हूँ।

मैं वहाँ से भागता हूँ—यमुना के किनारे। उसकी लहरें हँसते हुए किनारे से टकरा कर अपने संघर्ष का परिचय दे रही हैं। लहरों की मचलती हुई छाती पर सूरज की किरणें नाच रही हैं ठीक मेरे हृदय में जैसे वेदना नाच रही है, भूख खेल रही है। सोचता हूं सूरज डूब जायेगा तो यह किरणें भी मिट जायेंगी और मेरे हृदय की धड़कन भी बन्द हो जायेगी तो मैं...। नहीं, नहीं, मैं मरना नहीं चाहता। भूख, वेदना, शर्म, कमीनापन, ओह् ! क्या नहीं लगा है मेरे पीछे ?

मैं अब यहाँ से भाग जाऊँगा,

"अर्चना के यहाँ...

अर्चना के यहाँ...

मैंने अर्चना को खत लिखा—

अर्चना !

मैं जीवन में बूढ़े आदमी की तरह थक गया हूँ मेरा दौड़ता हुआ गर्म खून मेरे ही पापों के कारण जम सा गया है। क्योंकि मैंने जीवन में, आदमी को आदमी नहीं समझा।

मैंने तुम्हें धोखा दिया, तुम्हारे जीवन के उस कुँवारे बीज को नष्ट किया जो नारी के लिए गौरव कहलाता है। मैं समझता था कि मैं जो हूँ वह सदा रहूँगा पर दुनिया में घूम कर जान पाया हूँ कि जो आज है वह कल नहीं है। निरन्तर नाम की कोई वस्तु नहीं। सब परिवर्तनशील है, मैं तुम, समाज, धर्म, प्रेम और उसके तरीके।

अर्चना ! मैं अमानुषिक हत्यारा हूँ, भेड़िया हूँ, वैसा ही खतरनाक हिंस्र जन्तु हूँ जितना कि सेठ और पूंजीपति होते हैं। पर अब मैं मजबूर हो चुका हूँ, इसलिए मैं अपनी तमाम बुराइयों को भूल कर स्वस्थ जिन्दगी में अपने आपको ढालने की कोशिश करूँगा। मैं कलकत्ते आना चाहता हूँ। यदि तुम मेरी दयनीय दशा देखोगी तो मुझ पर जरूर कृपा करोगी।

तुम्हारे खत की प्रतीक्षा में हूँ।

तुम्हारा

अशेष

२६

***

अमृत ने डायरी पढ़ कर 'उफ' की और नियत समय पर अर्चना को लौटा दी। अशेष की इस करुणाजनक दशा पर उसकी पुरानी द्वेषता हँसी नहीं, अपितु उसका हृदय भी दया से द्रवित हो गया।...पर वह अशेष के लिए अधिक कुछ नहीं कर सकती थी। एक तो अशेष उससे दूर-दूर भागता रहता था और दूसरी उसकी अपनी मजबूरी।

इस मजबूरी का सही समाधान पाने के लिए उसने यह तय किया कि वह विक्टोरिया माँ को सब कुछ कह देगी पर वह अपने विचार को सहजता से प्रकट नहीं कर सकी।

आखिर एक दिन उसने बड़ी वेदना के साथ अपने रहस्य को विक्टोरिया के सामने प्रकट कर दिया।

विक्टोरिया ने जो इन दिनों ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार में लगी थी जो नित्य शनिवार की शाम चौरंगी पर ईसाई-धर्म प्रचार सम्बन्धी पर्चे व अन्य सामग्री बेचा करती थी, अमृत की इस मजबूरी का फायदा उठाना चाहा।

ईसा की भक्त आइस्टिन की माँ ने अपार स्नेह प्रकट करते हुए निवेदन किया—"अगर तुम धर्म परिवर्तन करके ईसाई बन सकती हो तो मैं तुम्हारी तन-मन से सहायता कर सकती हूँ।"

"और यदि मैं न बनूं तो ?"

"फिर मैं लाचार हूँ।"

अमृत के लिए वहाँ एक पल भी ठहरना अब दूभर हो रहा था।

उसे लगा कि यह समय आदान-प्रदान का है, हर व्यक्ति हर काम का बदला चाहता है।"

"यदि तुम धर्म-परिवर्तन कर लोगी, ईसा की शिष्या बन जाओगी तो प्रभु ईसा तुम्हारा अवश्य कल्याण करेंगे।" बड़ी आत्मीयता से आइ-स्टिन की माँ बोली।

"मुझे धर्म बदल कर प्राप्त किये क़ल्याण की जरूरत नहीं है, माँ।" उसने बड़े धैर्य से कहा—' मैं अपनी अन्तिम कोशिश तक इस बच्चे को जन्म दूँगी अपने धर्म में।" कह कर वह चली गई।

उसने एक होटल में डेरा जमाया।

पर उसका मन वहाँ नहीं लगा। उसे ऐसा महसूस होने लगा कि यहाँ का वातावरण उसके लिये इतना सन्देहपूर्ण हो गया है कि अब यदि वह और यहाँ रहेगी तो उसका दम ही निकल जायेगा। वह प्रायः होटल के मैनेजर की संदिग्ध दृष्टि को देख कर अनुमान लगाती थी कि "यह मेरे बारे में सब कुछ जान गया है, अब यह जरूर मेरी कमजोरी का लाभ उठायेगा, यह मेरे शरीर को झूठा करने का साहस करेगा।" यह सोच कर उसके हृदय में आन्दोलन मच जाता था।

अब उसने यह तय किया कि उसे वहाँ जाना चाहिए जहाँ उसका कोई परिचित न हो, और वह बम्बई आ गई। अनजाने शहर में उसे कुछ शान्ति मिली। उसका पेट ढोल की तरह फूल गया था।

खत्म होते हुए पैसों ने उसको बहुत ही चिन्तित कर दिया। जब बच्चा होने का समय आया तो उसके पास पचास रुपये थे।

मंगल की साध पूरी हो गई। अमृत ने एक बहुत ही सुन्दर बच्चे को जन्म दिया। बच्चे ने जब संसार में आकर प्रथम क्रन्दन किया तो मां की छाती से दूध की बूँदें टपक पड़ीं। वह अपना सारा विषाद भूल गई। उसने अपने बच्चे को एक बार नहीं हजार बार देखा—यह मंगल जैसा है. वैसा ही चेहरा, वैसी ही नाक, वैसे ही कान और वैसे ही होंठ।

बच्चे को देख उसकी आँखें गर्व से चमक उठीं।

२७

***

बाबा ने उपन्यास के २६ परिच्छेद लिख कर शेष लिखना बन्द कर दिया, वह उपन्यास की पाण्डुलिपि लेकर अमृत के पास पहुँचा । अमृत के घुटने पर उसका बच्चा सोया हुआ था और वह बड़ी तन्मयता से अपने स्वेटर का अन्तिम भाग बुना रही थी ।

बाबा ने पाण्डुलिपि रख कर मुस्कराते हुए पूछा—"स्वेटर कब तक तैयार हो जायेगा ?"

"शाम तक ।"

"मैं कहता था न, जरा सी मेहनत से तुम अपनी जिन्दगी बदल सकती हो । मैं तुम्हें कल पच्चीस रुपये इसको बेच कर ला दूँगा, पन्द्रह का फायदा होगा ।"— बाबा के होंठों पर मुस्कान थी ।

अमृत के हाथ उसी तरह चल रहे थे ।

बाबा ने कहा—"मैंने यह उपन्यास तुम्हारी कहानी का तैयार कर लिया है । बच्चे ने जन्म ले लिया है । इसके बाद मैं अपनी शैली को बदलना चाहता हूँ । मैं यह लिखना कदापि नहीं चाहता कि इसके बाद वह अबला अपने बच्चे को सीने से चिपकाये, नोजवानों, समाज-सुधारकों, तथा देश के रक्षकों के पास गई और सब के सब ने उसे दुत्कार-दिया । भूख और गरीबी ने उसे इतना दुर्बल बना दिया कि वह काँटे सी लगने लगी और अन्त में उसने आपको बेचना तय किया । यह बहुत पुरानी और शुष्क शैली है । सामाजिक प्राणियों को यह कल्पना ही लगती है । अतः मेरा विचार है कि मैं इसे नये ढंग से लिखूं ताकि अपने पाठकों पर यह गहरा प्रभाव छोड़े ।"

अमृत ने प्रश्न वाचक दृष्टि से इस बार बाबा को देखा।

बाबा ने पाण्डुलिपि पर नजर जमाते हुए कहा—"सी. वर्जिल जारजों की तरह मेरा भी विचार था कि मैं अर्जियाँ लिखूं। मेरी अर्जियाँ तुम्हारी उस दशा मे प्रारम्भ हों जब तुम्हारे माँस को यहाँ के लोग बड़ी खूबी से खा लेते हैं और तुम केवल हड्डियों का ढाँचा मात्र रह जाती हो जैसी तुम आज हो।......पर मुझे मालूम हुआ है कि भारतवर्ष में अर्जियाँ कोई नहीं पढ़ता। वह सिर्फ लिखने वाले की बकवास समझी जाती है। दफ्तर में जो अर्जियाँ आती हैं, उन्हें अफसर नहीं पढ़ते, बल्कि क्लर्क पढ़ते हैं और अफसर को बहुत ही संक्षिप्त रूप में मोटी-मोटी बातें समझा देते हैं।......एम्पलायमेंट एक्सचेंज में लाखों अर्जियाँ बिना बिना पढ़े ही फाड़ दी जाती हैं। इसलिये मेरा विचार है कि मैं कोई ऐसी सनसनीखेज शैली अपनाऊँ जिसे मेरे देश का बच्चा-बच्चा पढ़े।"

"इसके बारे में जो आप उचित समझते हैं कीजिये।"

बाबा पुनः अपने अध्ययन-कक्ष में आया। सोचते-सोचते उसे एक विचार आया—क्यों नहीं खुले पत्र लिखे जायं। खुले पत्र हमारे देश में बहुत दिलचस्पी से पढ़े जाते हैं। बाबा को याद आया कि एक सप्ताहिक में उसने देश के नेताओं के नाम खुला पत्र लिखा था जो बड़ी उत्कंठा से पढ़ा गया।

फिर खुला पत्र लिखेगा जिसमें वह नग्न-सत्य का पर्दाफाश करेगा।

उसने पहला खुला पत्र देश के समाज-सुधारकों के नाम पर लिखा।

संख्या—१, खुला पत्र, (समाज-सुधारकों से)

बम्बई।

समाज के उद्धार व उसमें चेतना को जाग्रत करने का ठेका आपने जो ले रखा है, आज के स्वार्थी युग में सेवाव्रत जैसा कठिन कार्य करना धरती के प्राणी का काम नहीं, आकाश के देवता का चमत्कार है। वह चमत्कार आपकी बाल सी महीन बुद्धि के हर गति

में मौजूद है ।

आपकी समाज-भक्ति बगुले की भक्ति से कम नहीं । बगुला जिस प्रकार एक टाँग ऊँची करके भगवान का स्मरण करता है और मछली आते ही उसे धर दबोचता है, ठीक उसी प्रकार आप विधवा-आश्रम, और अनाथ-आश्रम खुलवा कर अपने पंजे बखूबी तौर पर फैला देते हैं। आप मछलियों को खुल्लमखुल्ला नहीं पकड़ते क्योंकि आप बगुले की तरह खोटी भक्ति नहीं करते हैं इसलिये इन मछलियों को पकड़ने का काम आपके ठेकेदार याने आश्रम के मैनेजर करते हैं । ये मैनेजर जिन्हें मैं मछुवे के जाल की उपमा देता हूँ बहुत नमक हलाल होते हैं । यही कारण है कि आप आश्रम का सारा काम इन्हीं के विश्वास पर छोड़ देते हैं—एक पुत्र की तरह ।

आपके मैनेजर अन्तर्यामी होते हैं । वे आपके नैनों की भूख को पहचानते हैं और एक नई मछली आपकी सेवा में पहुंचा देते हैं, क्या आप इसे इनकी स्वामि-भक्ति नहीं कह सकते ?

पर आप जब देवत्व से राक्षसी रूप धारण कर लेते हैं तो आप उस मछली को उतनी बेरहमी से खाते हैं, जितने मजे से बंगाली एक मछली को भात के साथ खाता है । यह भी तो आपकी एक विशेषता है ।

भक्त की पुकार सुन कर जिस प्रकार भगवान आता है, उसी प्रकार विपत्तियों में पड़ी नारी आपके दूतों की नजर से नहीं बच सकती । आपकी और भगवान की नीति में बस इतना ही उचित अन्तर है कि भगवान अपने भक्त की चाहे वह कोढ़ी हो या लूला, चाहे वह काला हो या गोरा पुकार सुनकर आ जाता है और आपके दूत अपने आश्रमों में उन्हें ही पनाह देते हैं जो सुन्दर होती हैं, जो जवान होती है । काली-कलूटी और कुरूपों के लिये आपके यहाँ कोई स्थान नहीं है क्योंकि इससे आपके आश्रमों की शोभा चली जाती है । वैसे आपके आदर्श में इस प्रकार की कोई बात नहीं है ।

आपको पैसों की जरा भी चिंता नहीं है क्योंकि आपके पास सारे देश का उद्योग है। जब आपके पास अनाप-शनाप पैसा है तो क्यों नहीं मौज उड़ाई जाय ? चाहे उसका रूप आश्रम का हो, विश्रान्तिगृह का हो, दफ्तर का हो, वेश्यालय का हो, अथवा होटल का हो।

आपका हृदय मोम सा है। दीन-हीन पर पिघले बिना नहीं रह सकता लेकिन जब आपके संसर्ग से किसी असहाय के पेट में गर्भ रह जाता है तो आप उस नये जीव को कीड़े की तरह मरवा देते हैं और उसकी मौत पर गरीबों व अनाथों को मिठाइयाँ बँटवाते हैं ताकि आपके पाप-पुण्य का लेखा-जोखा बराबर रहे—परलोक में।

मुझे यह सुनकर हार्दिक वेदना हुई कि आप उस समय बहुत कृप-णता का परिचय देते हैं जब कोई असहाया आपकी आज्ञा उलंघन करती है। आप उस युवती को पुलिस की तरह निर्मम होकर पीटते हैं, यह बात आपके अहिंसा के सिद्धान्त की हत्या करती है। इस बारे में मेरी आपको राय है कि आप ऊंचे दर्जे के वैज्ञानिकों को अपनी सेवा में बुल-वायें और उन्हें पूँजी की चमक दिखा कर इस बात की हिदायत दें कि वे एक ऐसी दवा का इन्जेक्सन तैयार करें जिसे देने से मनुष्य सब कुछ भूल कर मशीन बन जाय, केवल आपके अस्तित्व को स्वीकार करे, आपकी आज्ञा माने। ऐसा अन्वेषण आपका बड़ा भला करेगा। इस बात को भूलेंगे नहीं कि जनता में आपकी बुराइयों के प्रति विद्रोह उठ रहा है, उसको रोकने का सबसे सुन्दर और स्थाई इलाज यही है।

रही कुरूपता की समस्या। आपको कितना भारी सदमा पहुँचा होगा जब एक प्रसूता जिसकी चमड़ी दूध सी सफेद थी, आपके पास आई, और आप उसे अपने यहाँ इसलिये नहीं रख सके कि वह कुरूप थी। मैं आपको इस बारे में यह सलाह दूंगा कि 'अमृत' जैसी युवतियों के यौवन को अपनी छत्र-छाया में रखने के लिये आप डाक्टरों से सरकारी अधिकारियों से मिलजुल कर प्लेस्टिक सर्जरी का हस्पताल खुलवा दीजिये।···व्यापारी तो आप हैं ही। कहिये कि इतना पैसा

सरकार दे और जनता के हितार्थ यह शुभ कार्य आप प्रारंभ कर दें।

मैं विश्वास रखूँगा कि आप इस काम में जरा जल्दबाजी दिखायेंगे। क्योंकि अमृत जैसी गोरी चमड़ी की युवतियां अपनी थोड़ी कुरूपता की वजह से सूख रही हैं। जब वे सूख जायेंगी तो आपको उनका उपभोग करने में आनन्द नहीं आयेगा।

अन्त में मैं आपको चेतावनी से जगाये देता हूं कि कुछ ये नई रोशनी के युवक आपकी सुधारवादी बातों से तंग आ गये हैं। वे क्रान्तिकारी कदम उठाने लग गये हैं, वे अपनी बीवियों को कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने को कहते हैं, वे आपके हिंस्र जबड़ों में लगे अमृत के खून का प्रतिशोध लेंगे वे विधवाओं को अपनाने को तैयार हैं, वे नाजायज संतान को एक इन्सान की सन्तान मान कर सीने को लगाने से तत्पर हैं और उन्हें भी जीवित रहने का हक देते हैं, यह आपके लिये दुःखद संवाद है, आपके आराम के लिये घातक है। वक्त रहते संभल जाइये और धर्म के नाम और भारतीय संस्कृति-सभ्यता के डूब जाने की दुहाई लगाइये, नारा बुलन्द कीजिये। खतरा-खतरा चिल्लाइये। बस।

संख्या—२, खुला पत्र (धर्म के ठेकेदारों से)

बम्बई

ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आप की ठेकेदारी को चांद-सूरज की उम्र लगे! उसका सितारा दूसरे महायुद्ध के महान् 'हिटलर' की तरह बुलन्द हो।

कल मैंने जमा-बाकी निकाल कर हिसाब लगाया है कि आपकी जमात में से युवक-पंक्ति दिन-प्रति-दिन निकलती जा रही है, इस बात की ओर आपको विशेष ध्यान देना चाहिये। मैं कहता हूँ उतना ही ध्यान देना चाहिए जितना युद्ध-इच्छुक एटम बम, हाइड्रोजन बम, बनाने की ओर ध्यान देते हैं।

मन्दिर, मस्जिद और गिर्जा का अभाव नहीं है, अभाव है तो आप

के संगठन का। आप मकान-सड़क बनाने वाले ठेकेदारों की तरह धर्म की ठेकेदारी की बोलियां लगाने लगे हैं, उन बोलियों ने आप के भाव, फूट पड़े हुए मजदूरों की तरह, गिरा दिये हैं। इसलिए अपने भाव को फिर से बढ़ाने के लिये आप एक यूनियन बना लीजिये और अपनी बोलियाँ एक सी कर लीजिये। जो आप के नियम शर्तें न मानें, उन्हें आप अपनी जमात से बाहर निकल कर भिखारी या पाखण्डी का तमगा प्रदान कर दीजिये।

मुझे आप से एक शिकायत है। कल धर्म-विशेषज्ञ आचार्य धर्मोपदेशक कृष्ण-अलबर्ट-अली भारत-भ्रमणीय ने सूचना दी है कि सब धर्मों के ठेकेदार खुले रूप से पूंजीपतियों का साथ देने लग गये हैं, जिससे शोषित वर्ग में विद्रोह उत्पन्न हो रहा है। कुछ महन्त और महराज सट्टे बाजार में पदार्पण कर गये हैं। कुछ ईसाई महाराज पूंजीपतियों को अपनी रकमों से बड़े कटरे और कम्पनियाँ खरीदने में सहायता कर रहे हैं। वे वेश्यागामी हो गये हैं और रखैलें रखने लग गये हैं। उन्होंने यह भी सूचना दी है कि मन्दिरों में नारियाँ भगवान का दर्शन करने नहीं आतीं वरन् अपने प्रेमियों से मिलने आती हैं। मैंने कुछ मन्दिरों के पास ऐसे घर जिन्हें शरीफ अड्डे कहने चाहिये देखें हैं जिनमें वे युवतियाँ जो फेरी में चक्कर निकालते समय सौदा तय करती हैं।

उन्होंने मुखियों की नंगे शब्दों में आलोचना की कि मैंने ऐसे प्रति-शत मुखियों को देवताओं की आरती उतारते देखा है लेकिन उनकी आँखें इतनी चंचल होती हैं कि उनके मन की वासना के रहस्य को हर-एक क्रांतिकारी विचार वाला जान जाता है। मेरी राय है कि उन्हें या तो यूनियन की ओर से न झाँकने की कठोर आज्ञा दे दी जाय अथवा उन्हें काला चश्मा बक्श दिया जाय जिससे पाप प्रकट न हो।

महन्त और महाराज को चाहिये कि वे पूंजीपतियों को अपने पास फटकने भी न दें और वे किसी भी घर में 'पधारणी' न करें। बेहतर तो यह होगा कि वे उनका थोड़ा-थोड़ा सभाओं में विरोध करें जैसा

समाजवादी पार्टी वाले कांग्रेस का विरोध करते हैं । यदि वे ऐसा करने में असमर्थ हैं तो गुप्त घरों का निर्माण करना चाहिये जहाँ उन्हें रात को बारह बजे से लेकर चार बजे तक सभायें करनी चाहिये ।

भड़कती हुई जनता में धर्म का विश्वास बिठाने के लिये दो चार महन्तों को पदच्युत करना चाहिये—थोड़े काल के लिये । और ठेकेदारों को गरीबों और दलितों की बस्ती में चक्कर निकालने चाहि‍ं ।

उन धर्म के ठेकेदारों, जो पूंजीपति हैं, को सावधान कर देना चाहिये कि वे ४० साल के बाद विवाह न करें । हालाँकि साधारण जनता इस रहस्य से अनभिज्ञ है कि 'वे 'च्वयन प्राश' खा कर पुनः जवान बन जाते हैं । उनकी जवानी उनकी मौत तक कायम बनी रहती है लेकिन नई पीढ़ी ऐसे विवाह को अभिशाप और अत्याचार मानती है इसलिये उन्हें इस दृष्टान्त के साथ समझाना चाहिये—जिस व्यक्ति की काम-वासना शान्त नहीं होती, उन्हें दूसरा विवाह कर लेना चाहिये । कामदेव बहुत बुरा होता है—इसने महर्षि विश्वामित्र को भ्रष्ट कर दिया । सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा को अपनी बेटी के साथ बलात्कार करने के लिये विवश कर दिया ।......मैं विश्वास करता हूँ कि वे युवक शान्त हो ही जायेंगे ?

व्यभिचार के अड्डों के विरुद्ध अखबारबाजी करनी चाहिये, नारे बुलन्द करने चाहिये ।

धर्म की नींव को मजबूत करने के लिये चुनाव में खड़ा होना चाहिये, उनकी जीत ही धर्म की जीत समझी जायेगी ।

मुझे यह लिखते भय लग रहा है कि अमृत आपके विरुद्ध प्रचार करती है । अमृत को आपने चरित्र हीन, कुलटा, रंडी, छिनाल शब्दों से भूषित किया है, वह कहती है कि मेरे सामने कई धर्म के ठेकेदारों ने बुरा प्रस्ताव रखा, उनका मैं नाम ले-लेकर आन्दोलन करूँगी ।...... धर्म की धुरियो ! किसी गुफा में एक ऐसी मशीन बैठा दीजिये जैसी फ्राँस की राज्य-क्रान्ति में क्रान्तिकारियों ने 'गुलोटिन' बिठायी थी । जिस युवती का आप खून और चर्बी समाप्त कर दें, उसे तुरन्त मशीन के

नीचे खड़ा करके शान्ति की यात्रा करा दें। यदि आप अमृत के साथ ऐसा करते तो आपका धर्म-सूर्य बेखटके चमकता रहता। खून और चर्बी शरीर से निकल जाने के बाद आप कंकाल का भोग तो नहीं करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

अन्त में आपसे निवेदन करूँगा कि आप अपने ललाट पर कुँकुम की जगह नख-पालिश का टीका लगायें और आड़ बनायें केसर की जगह पीले रंग की। क्योंकि आपके कुँकुम और केसर का रंग अब फीका पड़ चुका है। बस।

संख्या ३—खुला पत्र, (अपनी सरकार से)

बम्बई

तुम्हारी छत्रछाया के नीचे सिंह और गाय एक साथ पलते हैं। पर तुमने उन्हें पालने का ठेका नहीं लिया, क्योंकि तुम दूरदर्शी हो। तुम्हें विश्वास है कि जिस भगवान ने आदमी को पैदा किया है, वह उसे खाना देगा ही—चींटी को कण भर और हाथी को मन भर देने वाला त्रिलोकी क्या मनुष्य को भूखा मारेगा ?

मैं कहाँ कहता हूँ कि तेरे सिंहासन के नीचे आदमी भूखों मरता है, बेकार मारा-मारा आवारा कुत्ते की तरह घूमता है, ये सब तो उसके पूर्व-जन्म के फल हैं। जिसने वहाँ दिया है, उसे यहाँ मिलेगा—यह तुम्हारे देश का हर शास्त्र कहता है।

पर जरा इन पत्र वालों पर यह प्रतिबन्ध और लगा दिया जाय कि इस प्रकार की न्यूज को थोड़ा क्लैसिक कर के छापें याने भूखों मरने वाली मनुष्य कौम को इस प्रकार लिखें कि अधिक खाने पर उसका पेट फट गया और उसकी मौत हो गई।......भूखों मरने वाले इन्सानों के बारे में उन्हें शास्त्रों के श्लोक देकर गर्व से लिखना चाहिये कि ये भारत के सच्चे सपूत हैं, जो उपवास करके बचत के आन्दोलन में पूर्ण सहयोग देते हैं।......नंगा रहना भारत की प्राचीन सभ्यता है, यह

कपड़ा-कपड़ा चिल्लाने वाले अपने उन ऋषियों-मुनियों से अपरिचित हैं जो पैदा हुए थे नंगे और मरे तो एक लंगोटी को लेकर।......दरअसल में इनमें सन्तोष की भावना नहीं है। जनता भौतिकवाद की पुजारिन है, इनका नाश अवश्यमेव होगा। यही सोचकर तुमने इनका ठेका नहीं लिया है। तुम्हारा विधान इस प्रकार की निरर्थक बातों का छकड़ा नहीं है।

दुधारू गायों (धनवानों) से तुम्हें बड़ा प्रेम है। उनकी तुम लातें भी खाती हो पर मैं इतना जरूर कहूँगा कि तुम्हारी गायों में जरा भी हया-दया नहीं। वह घास खा कर दूध नहीं देती, गरीबों का खून पीकर दूध देती है—वह भी केवल तुम्हें। लेकिन अब यह तुमसे भी आँख बदलेगी क्योंकि तुम इनके चिचड़ (टैक्स) चिपकाने लग गये हो, ये चिचड़ गायों का खून पीने में बड़े तेज होते हैं। पर मैं शाबासी इन गायों को देता हूँ कि इन्होंने चिचड़ तो रख पर छोटे-छोटे। बड़ों को तो उन्होंने अपने 'नकली रूप' में छिपा दिया है। तुम्हें सावधान हो जाना चाहिये।

तुम्हारे कर्णधारों की योजनाओं का मैं लोहा मानता हूँ। उन्हें मैं योजना-बिहारी कहूँ तो अनुचित नहीं होगी। उनके दिमाग की उपज गजब की होती है। काश ! इस देश की जनता इन योजनाओं की कद्र करती। वह तो इन्हें निकम्मे मस्तिष्कों की बेवकूफियाँ कहती है। राम ! राम !! ऐसी गंवार जनता का उद्धार सात जन्म में भी नहीं हो सकता जो दिन-रात रोटी-कपड़ा चिल्लाती रहती है।

अमृत को तुम्हारी इतनी बड़ी दुनिया में कहीं भी आसरा नहीं मिला। उसका बच्चा जो तुम्हारे देश की आजादी की लड़ाई के सिपाही का बेटा है जिसके बाप को तुम्हारी गाय ने सिंहनी की तरह खा लिया। ये तुम्हारी गायें भी हिंसक हो गई, कलयुग है न। लेकिन यह अमृत विद्रोहिणी नारी है। उसकी आँखों में ऐसी चिनगारियाँ जलती हैं जिनका रुख बहुत ही खतरनाक जान पड़ता है। मैं भारत के तमाम

अबलाओं का उसमें दुख-दर्द पाता हूँ। वह कहती है—"अपनी सरकार जोंक है, उसने मेरे सारे खून को चूस लिया, उसने मुझे मरने के लिए मजबूर किया।"

मैं सलाह देता हूँ कि तुम क्यों नहीं उसे पागल करार कर देती। उसके लिये राँची और आगरा बेचैन है। अपनी रक्षा के लिए सबको प्रयत्न करना चाहिये। तुम्हें भी।

अन्त में मैं कहूँगा कि जो तुम्हें अच्छी नहीं कहते, वे देश के दुश्मन हैं, पागल हैं, गद्दार हैं। बस।

संख्या—४. खुला पत्र (नौजवानों से)

बम्बई

मेरा यह अन्तिम पत्र तुम्हें है, क्योंकि अमृत को जितनी अधिक शिकायतें हैं, वे सब तुम्हारे प्रति ही।

उसका एक-एक शब्द आग से भरा हुआ है कि ये नौजवान सफेद-पोश हैं, नारी के तन से खेलने वाले खिलाड़ी, लफंगे, आवारा और न जाने क्या क्या? यह सही है कि तुम लोगों ने उसे बहुत ही निराश किया है। उसे उसी दृष्टि से देखा है जिस दृष्टि से तुम एक परवश और दुश्चरित्र को देखते हो।

मेरे दोस्तो! देश और दलितों का भविष्य तुम्हारे ही कन्धों पर निर्भर करेगा। इसलिए अपने थोथे आदर्शवादी भाषणों को छोड़ कर यथार्थ की ओर झुको, कहो कम और करो अधिक। केवल 'नौजवान-संघ' स्थापित करने से जिम्मेदारियाँ पूरी नहीं होतीं। पूर्ण होती हैं चीन की तरह वहाँ की बहिष्कृत और उपेक्षित नारियों को अपनाने से, उनसे विवाह कर के उनके सदाचार को ऊँचा उठाने से।

यह आवाज कि नारी काठ की हँडिया है—जो एक बार ही चूल्हे पर चढ़ती है—तुम्हारी आवाज नहीं है। यह आवाज उन दकियानूसी मस्तिष्कों और बुजुर्गों की उपज हैं जो नारी को अपने ऐश का साधन

मानते हैं, उसे उत्पादन की मशीन मानते हैं। तुम्हारी नारी तो मानवी है। क्या उसे तुम रोटी के बदले में शरीर का सौदा करते देख सकोगे? ···नहीं तो फिर अपने सिद्धान्तों को मजबूर बनाओ। कहो कम, करो अधिक।···याद रखो! वैसी ही नारियों में तुम्हारी और मेरी बहिनें और पत्नियाँ भी शामिल होती हैं।

संभव है अमृत के आँसू तुम्हारी आत्मा को हिला न सके हों पर उसमें कम्पन अवश्य भरा है। उसने तुम्हारी रग-रग में तूफान जरूर उठाया है। तुम्हें यह सोचने के लिए जरूर बाध्य किया है कि तुमने उसे क्यों निराश किया?

तुम्हारा समाज खौलता नरक कुण्ड है और ये समाज के ठेकेदार निर्दोष मानवों की उसमें आहुतियाँ डाल रहे हैं। देखते नहीं हो, अपने भाइयों की दुर्दशा, सुनते नहीं हो वे करुणा और पीर भरी करोड़ों चीखें और चीत्कारें। इन्सान जिंदा धर्म की आग में तिलमिला रहा है और ये ठेकेदार, समाज-सुधारक उद्धार के नाम पर नर-नारियों का शराफत में संहार कर रहे हैं ताकि वे खूनी न कहलायें।

खूनी इन्सान तुम्हारे समाज में दिन-प्रति-दिन बढ़ रहे हैं। इस खून का स्वाद ही ऐसा है कि जिसके जबड़ों में लग जाय फिर छूटता नहीं। कल ही बात है कि तुम्हारे समाज के बारह सदस्यों ने एक नारी के जिस्म को बर्बरता पूर्ण नोच डाला, उसमें तुम्हारी सरकार के भी खैरख्वाह खूनी चाकर शामिल थे।

तुम चुप बैठे हो? मैं कहता हूँ कि यदि तुम अब भी चुप बैठे रहोगे तो एक दिन तुम्हारे देश का भविष्य 'गीली गगरी' सा हो जायेगा जहाँ इन्सानियत का गला खुले आम घोंटा जाता है।

अमृत की चीख ने तुम्हारे पर असर न किया हो, पर जहाँ हजारों अमृतों की चीखें तुम्हारे कानों में पड़ेंगी वहाँ तुम्हें जागना होगा। मैं कहता हूँ अभी जाग जाओ। क्योंकि—

तुम्हें समाज के ढाँचे को बदलना है—तुम्हें मानवता के लिये धर्म

के थोथे रूप को मिटाना है---तुम्हें देश के घातक सफेदपोशों से सत्ता छीननी है---तुम्हें नई जिन्दगी और नया गीत बनाना है ।

मैं कहता हूँ---मेरा यह खुला पत्र पढ़कर तुम जाग ही जाओगे, डरो नहीं, जीत तुम्हारी है ।

मरुस्थल में फूल पैदा करने की आशा मरीचिका के समान है । देश और समाज के लिये ये सफेदपोश मरुस्थल के समान हैं,जो अपनी भूल से उसे और वीरान कर देंगे । यह वर्ग जो आज तुम्हारी सभ्यता और संस्कृति का झूठा प्रतिनिधित्व करता है, मनुष्य को मनुष्य नहीं समझता, भूतकाल के जीवित शव हैं । क्योंकि वे जीवन के विरुद्ध है, इन्सानियत के खिलाफ है, मृत्यु के चिन्ह हैं । नया जीवन कोटि-कोटि गरीबों-शोषितों से मिलेगा क्योंकि जनता ही नये समाज की स्थापना में संघर्षरत है ।...केवल तुम्हीं ऐसे हो जो जनता के हृदय को जीत सकते हो ।...सावधान हो जाओ, कहीं जनता की नकेल सफेदपोशों के पास न चली जाय ।

अन्त में मैं कहूँगा---अमृत के दर्द को मत भूलो । उसने एक नये इन्सान की रक्षा करके बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है, इतिहास उसे क्षमा तो करेगा ही । पर इतिहास उन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा जो जनता के साथ विश्वासघात करते हैं, आदमी को आदमी नहीं समझते । इसलिये इकट्ठे हो तमाम भेदभावों को भूल कर नये-समाज की स्थापना करो---बस ।

२८

***

"तुम्हें किसी ने आसरा नहीं दिया ?" बाबा ने अमृता से पूछा—"ये चार खुले पत्र तुम्हारी स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं, क्यों ?"

"हां ! अमृत ने धीरे से कहा—"पर बाबा ! आज बच्चे के पेट में दर्द है, बहुत रोता है।"

"मुझ से पहले आकर क्यों नहीं कहा।"

"बाबा ! जब आप लिखते हैं तब रोकने को दिल नहीं होता। ऐसा जान पड़ता है कि मैं रोक कर कोई अपराध कर रही हूं। महान् आत्मा के विचारों को विशृंखल कर रही हूं। मेरा जी चाहता है कि तुम लिखते जाओ, तुम्हारे ये हाथ थकें ही नहीं और तुम्हारी यह लेखनी रुके ही नहीं।"

"भावना में बह जाती हो तुम। जाओ बच्चे को, मैं डाक्टर को दिखा आता हूं। मुझे अब तो उपन्यास का अन्तिम परिच्छेद ही लिखना है।"

"मुझे आप हस्पताल का पता दे दीजिये, मैं ही चली जाती हूं।"

"जिद्दी लड़की हो।" बाबा ने उसके सिर पर हल्की चपत मारी। अमृत हँस पड़ी और फिर बच्चे को चूमती-चूमती बाहर चली गई।

बाबा पुनः अपने अध्ययन-कक्ष में चले गये। उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया।

२६
★★★

अमृत सब ओर से निराश हो गई।

भूख और लांछनों से पीड़ित मन हाहाकार कर उठा। बच्चे का रोना और अपने सूखे स्तनों को देख कर वह अपना सिर फोड़ना चाहती थी। लेकिन उसे बार-बार मंगल के शब्द याद आते थे—"मेरे बच्चे को मरने नहीं दोगी, उसे किसी भी मूल्य पर जीवित रखोगी, यह वचन मुझे और दे दो।"

अमृत ने जीवित रहने का अन्तिम संघर्ष किया। उसने देश-सेवक का द्वार खटखटा कर यह कहा—"यह तुम्हारे स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी का बेटा है, इसकी रक्षा करो।"

"आज हमारे देश में यह नई बीमारी और फैली है। हर छिनाल स्त्री अपने को शहीद की पत्नी बताती है और आश्रय की भीख माँगती है, मैं कहता हूँ—दूसरा रास्ता देखो।"—देश-सेवक ने उसे उत्तर दिया।

अमृत की आंखों में आँसू आ गये ? उसने सक्रोध कहा—

एक प्रश्न ? एक उत्तर।

तब उसके साहस ने दम तोड़ दिया—"मैं मरूँगी, कुत्ते की जिन्दगी बसर करके अपने बच्चे को भूखों मरता मैं नहीं देख सकती।"—अमृत की भृकुटियां तन गईं। उसकी आँखों में हिंसा की भयंकर रेखायें नाच उठीं।

समुद्र की भयंकर लहरों के सामने अपने बच्चे को भगवान के आसरे छोड़कर वह कूद कर मरने को तैयार हुई।

एक बार वह कूदने के पहले डरी। जीवन कितना प्यारा है, उसका मोह कितना प्रबल होता है, यह उसने मौत के किनारे खड़ी होकर जाना।

बच्चा रोया। अमृत ने अपने बच्चे को अन्तिम बार चूमना चाहा, सीने से चिपकाना चाहा। उसने आकर अपने बच्चे को सीने चिपका लिया। उसके गालों पर चुम्बनों की बौछारें लगा दी।

"कितना प्यारा बच्चा है।"—अमृत ने सोचा—'मंगल जैसा ही, उसकी भावनाओं और विचारों का प्रतिरूप। मेरे बाद इसे कौन सँभालेगा, यह किसे मुँह भर कर 'माँ' कहेगा—माँ—माँ—माँ!...मैं नहीं मरूँगी, नहीं मरूँगी, आत्म-हत्या पाप है, मैं आत्म-हत्या नहीं करूँगी। मैं संसार से संघर्ष करके अपने बच्चे को जीवित रखूँगी। मैं आत्महत्या......।"

'कौन है?" बाबा ने पुकारा

"मैं!" वह बच्चे को नीचे रखकर सागर की ओर बढ़ी—डर के।

"यहाँ आत्महत्या करने आई हो।"

"हाँ, पर अब मैं नहीं करूँगी।" उसने काँपते हुए कहा।

"तुम जरूर आत्महत्या करोगी।" बाबा ने उसका हाथ पकड़ा, तुम आत्महत्या करने जा रही थी?"

"मैं आत्म हत्या कर रही हूँ?...बाबा संसार में आज तक कोई ऐसा इन्सान पैदा नहीं हुआ जिसने सोचा भी हो कि वह आत्महत्या करेगा।...

३०

★★★

बाबा ने उपन्यास समाप्त करके एक बार प्राची की ओर देखा—सूरज बहुत तेज होकर चमक रहा था। तब वह अमृत के पास गया। अमृत बच्चे को दोनों हाथों में झूले की तरह झुला कर सुला रही थी। बाबा ने उस बच्चे को पितृत्व की भावना से देखा—यह नया इन्सान नई जिन्दगी का सन्देश लेकर धरती पर आया है। इसकी रगों में एक सेनानी का गर्म खून है और स्वतन्त्र देश के स्वच्छन्द विचार इसके मस्तिष्क में हैं।...यह प्रभात के कमल की तरह कोमल और चट्टान की तरह कठोर है। यह एक महान परिवर्तन है—नव निर्माण लिये।

और बाबा दृढ़ता से कह उठे—"इसे जिन्दा रखो, यह नया इन्सान है—नये युग का नया आदमी—नई क्रान्ति—नया विचार—इसे मत मरने दो।"

बाबा ने बच्चे को जोर से चूम लिया।

अमृत की आँखें खुशी से चमक उठीं।